जीवन जागृति केंद्र बम्बई द्वारा प्रकाशित

आचार्य रजनीश साहित्य

पुस्तक	पृष्ठ	मूल्य
साधना-पथ	१५४	३-००
क्रांति-बीज	१३८	४-००
सिंहनाद	८०	१-२५
मिट्टी के दिये	१९६	३-५०
पथ के प्रदीप	२१३	३-५०
मैं कौन हूं ?	१०३	२-००
अज्ञात की ओर	७१	२-००
नये संकेत	७३	१-७५
संभोग से समाधि की ओर	१६७	३-५०
अन्तर्यात्रा	२२२	३-५०
शांति की खोज (सुश्री उर्मिला द्वारा ऋचाओं का संकलन)	१०४	२-००
सत्य की खोज	१२३	३-००
अस्वीकृति में उठा हाथ	१५४	५-००
प्रभु की पगडंडियां	१५८	४-००
शून्य की नाव	११६	३-००
सत्य की पहली किरण	१८८	६-००
समाजवाद से सावधान	१२४	३-५०
प्रेम के फूल	१८०	५-००
जिन खोजा तिन पाइयां (कुंडलिनी योग पर प्रवचन)		२०-००
ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया (पंच महाव्रत पर १२ प्रवचन)		४-००
महावीर और मैं (महावीर के जीवन, साधना और शिक्षा पर २४ प्रवचन)		३०-००

पुस्तिकायें	पृष्ठ	मूल्य
अमृत-कण	२४	०-६०
अहिंसा-दर्शन	३२	०-५०
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	५५	१-००
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	४०	०-७५
सूर्य की ओर उड़ान	६५	१-००
प्रेम के पंख	५७	०-७५
सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	५५	१-५०
नारगोल युवक युवतियों के समक्ष प्रवचन	२०	०-२५
क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार (भारत के साधु-संत)	३०	०-३५
न आंखों देखा, न कानो सुना (गोपनीय गांधी)	८	०-१५
क्रांति की नयी दिशा, नयी बात (नारी और क्रांति)	३१	०-३०
व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज	२०	०-२५
युवक कौन		०-३०
युवा और यौन		०-३०
बिखरे फूल (बोध वचन संकलन)	३६	०-३५
संस्कृति के निर्माण में सहयोग	२८	०-३०
विवाह और परिवार	३२	१-००
मन के पार	८५	१-००

भगवान श्री रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

युगान्तर

वर्ष : ३ अंक : ५ : ६

सितंबर १९७१

मानसेवी—

संपादक :
अरविन्द कुमार

उप-संपादक :
आलोक कुमार पाण्डे
राजेन्द्र 'आकुल'

सौजन्य संपादक :
कनु शेठ

व्यवस्थापक :
स्वामी धर्म सरस्वती
(आर. आर. मिश्रा)

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

१	प्रकाश और अंधकार	: बोध कथा
२	पत्रों के अमृत आलोक से	:
६	From Doubt to Beyond	: मां वीत संदेश (Dr. Miss Grazia Marchiano, Bombay.)
१२	'जीवन ही है प्रभु' (प्रवचन)	: संकलन, मां योग मीरा, जूनागढ़
३५	रजनीश : एक आत्म-चिंतन	: शिव
३६	मेरी संन्यास यात्रा	: स्वामी कृष्ण कबीर
४१	अंगों की टूटन—प्राणों की घुटन	: माँ योग मीरा, जूनागढ़
४४	अज्ञात की परतों से	: भेंट वार्ता (भगवान श्री से)
५४	भगवान तथागत	: संकलन, मां प्रेम रश्मि
५७	प्यारे अमृत-पत्र	: सुश्री चंदन को
६२	विश्व नीड़-कीर्तन मण्डली-यात्रा	: एक रिपोर्ट

गीत : काव्य

१०	रजनीश बोलो न !	: स्वामी अगेह भारती
११	श्री रजनीश के प्रति	: शिव
४३	सत्य है तेरे मन में	: राजेन्द्र 'आकुल', जबलपुर

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.

,, वार्षिक : १२-०० रु.

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक- अरविंद कुमार के लिए, अशेष प्रिंटर्स,

७८१, राइट-टाउन, जबलपुर द्वारा मुद्रित

प्रकाश और अन्धकार

(भगवान श्री की बोध कथाओं से)

सुबह आती है तो मैं सुबह को स्वीकार कर लेता हूं और सांझ आती है तो सांझ को। प्रकाश का भी आनन्द है और अंधकार का भी। जब से यह जाना तब से दुःख नहीं जाना है।

किसी आश्रम से एक साधु बाहर गया था। लौटा तो उसे ज्ञात हुआ कि उसका एकमात्र पुत्र मर गया है और उसकी शवयात्रा अभी राह में ही होगी। वह दुःख में पागल हो गया। उसे खबर क्यों नहीं की गयी? वह आवेश में अंधा दौड़ा हुआ श्मशान की ओर चला। शव मार्ग में ही था। उसके गुरु शव के पास ही चल रहे थे। उसने दौड़कर उन्हें पकड़ लिया। दुःख में वह मूर्छित सा हो गया था। फिर अपने गुरु से उसने प्रार्थना की: "दो शब्द सांत्वना के कहें। मैं पागल हुआ जा रहा हूं।" गुरु ने कहा: "शब्द क्यों, सत्य ही जानो। उससे बड़ी कोई सांत्वना नहीं।" और, उन्होंने शव पेटिका के ढक्कन को खोला और उससे कहा: "देखो, 'जो है' उसे देखो।" उसने देखा। उसके आंसू थम गये। सामने मृत देह थी। वह देखता रहा और एक अंतर्दृष्टि का उसके भीतर जन्म हो गया। जो है—है, उसमें रोना हँसना क्या? जीवन एक सत्य है, तो मृत्यु भी एक सत्य है, जो है—है। उससे अन्यथा चाहने से ही दुःख पैदा होता है।

एक समय मैं बहुत बीमार था। चिकित्सक भयभीत थे और प्रियजनों की आंखों में विषाद छा गया था। और मुझे बहुत हंसी आ रही थी, मैं मृत्यु को जानने को उत्सुक था। मृत्यु तो नहीं आई, लेकिन एक सत्य अनुभव में आ गया। जिसे भी हम स्वीकार कर लें, वही हमें पीड़ा पहुंचाने में असमर्थ हो जाता है।

पत्रों के अमृत आलोक से

(सुश्री सोहन बाफना, पूना को लिखे गए पत्र)

प्रिय बहिन,

प्रेम. तुम्हारा पत्र मिला है.

आनन्द में जानकर आनंदित होता हूं.

मेरे जीवन का आनन्द यही है.

सब आनन्द से भरें, स्वाँस स्वाँस में यही प्रार्थना अनुभव करता हूं.

इसे ही मैंने धर्म जाना है.

वह धर्म मृत है, जो मंदिरों और पूजागृहों में समाप्त हो जाता है.

उस धर्म की कोई सार्थकता नहीं है, जिसका आदर निष्प्राण शब्दों और सिद्धांतों के ऊपर नहीं उठ पाता है.

वास्तविक और जीवित धर्म वही है, जो समस्त से जोड़ता और समस्त तक पहुंचाता है.

विश्व के प्राणों से जो एक कर दे, वही धर्म है.

और, वे भावनाएं प्रार्थना हैं, जो उस अद्भुत संगम और मिलन की ओर ले चलती हैं.

और, वे समस्त प्रार्थनायें एक ही शब्द में प्रगट हो जाती हैं.

वह शुद्ध प्रेम है.

प्रेम क्या चाहता है ?

जो आनन्द मुझे मिला है, प्रेम उसे सबको बाँटना चाहता है.

प्रेम स्वयं को बाँटना चाहता है.

स्वयं को बेशर्त दे देना प्रेम है.

बूंद जैसे स्वयं को सागर में विलीन कर देती है, वैसे ही समस्त के सागर में अपनी सत्ता को समर्पित कर देना प्रेम है.

और, वही प्रार्थना है.

ऐसे ही प्रेम से आंदोलित हो रहा हूं.
उसके संस्पर्श ने जीवन अमृत और आलोक बना दिया है.
अब एक ही कामना है कि जो मुझे हुआ है, वह सबको हो सके.
वहां सबको मेरा प्रेम संदेश कहें.

रजनीश के प्रणाम
३ फरवरी १९६५

प्रिय सोहन,
प्रेम. तेरा पत्र मिला.
कविता से तो हृदय फूल गया.
सुना था प्रेम से काव्य का जन्म होता है,
तेरे पत्र में उसे साकार देख लिया.
प्रेम हो तो धीरे-धीरे पूरा जीवन ही काव्य हो जाता है.
जीवन-सौंदर्य के फूल प्रेम की धूप में ही खिलते हैं.
यह भी तूने खूब पूछा है कि मेरे हृदय में तेरे लिए इतना प्रेम क्यों है ?
क्या प्रेम के लिए भी कोई कारण होते हैं ?
और यदि किसी कारण से प्रेम हो तो क्या हम उसे प्रेम कहेंगे ?
पागल, प्रेम तो सदा ही अकारण होता है.
यही उसका रहस्य और उसकी पवित्रता है.
अकारण होने के कारण ही प्रेम दिव्य है और प्रभु के लोक का है.
फिर, मैं तो उसी भांति प्रेम से भरा हूं, जैसे दीपक में प्रकाश होता है.
पर उस प्रकाश के अनुभव के लिए आंखें चाहिए.
तेरे पास आंखें थीं तो तूने उस प्रकाश को पहचाना.
इसमें मेरी नहीं, तेरी ही विशेषता है.
वहां सबको मेरे प्रणाम कहना.
माणिक बाबू और बच्चों को प्रेम.

रजनीश के प्रणाम.
१२ मार्च १९६५.

प्रिय सोहन,

तू इतने प्यारे पत्र लिखेगी, यह कभी सोचा भी नहीं था !
और ऊपर से लिखती है कि मैं अपढ़ हूं !
प्रेम से बड़ा कोई ज्ञान नहीं है—

और जिनके पास प्रेम न हो, वे अभागे ही केवल अपढ़ हो सकते हैं.
जीवन में असली बात बुद्धि नहीं, हृदय है--
क्योंकि, आनन्द और आलोक के फूल बुद्धि से नहीं, हृदय से ही उत्पन्न होते हैं.

और, वह हृदय तेरे पास है-और बहुत है ?
क्या मेरी गवाही से बड़ी गवाही भी तू खोज सकती है ?
यह तूने क्या लिखा है कि तुझसे कोई भूल हुई हो तो मैं लिखूं ?
प्रेम ने आज तक जमीन पर कभी कोई भूल नहीं की है.
सब भूलें अ-प्रेम में होती हैं.
मेरे देखे तो जीवन में प्रेम का अभाव ही एकमात्र भूल है.
वह जो मैंने लिखा था कि 'प्रभु मेरे प्रति ईर्ष्या पैदा करे', वह किसी भूल के कारण नहीं, वरन्—
'जो अनंत आनन्द मेरे हृदय में फलित हुआ है' उसे पाने की प्यास तेरे भीतर भी गहरी से गहरी हो, इसलिए.
माणिक बाबू को मेरा प्रेम. बच्चों को स्नेह.

रजनीश के प्रणाम.
२२ मार्च १९६५

श्री नटवरसिंह पो० सींधा वदर, खेखा, गुजरात को लिखा गया एक पत्र

मेरे प्रिय,

प्रेम । ध्यान में शरीर भाव खोयेगा ।
अशरीरी दशा निर्मित होगी ।
शून्य का अवतरण होगा ।
इसमें भय न लें-वरन् प्रसन्न हों, आनंदित हों !
क्योंकि, यह बड़ी उपलब्धि है ।
धीरे-धीरे ध्यान के बाहर भी अशरीरी भाव फैलेगा और प्रतिष्ठित होगा ।

यह आधा काम है।

शेष आधे में ब्रह्म भाव का जन्म होता है।

पूर्वार्ध है अशरीरी भाव।

उत्तरार्ध है ब्रह्म भाव।

और श्रम में लगें।

स्रोत् बहुत निकट है।

और संकल्प करें। विस्फोट शीघ्र ही होगा।

और समर्पण करें। और स्मरण रखें कि मैं सदा साथ हूं, क्योंकि अब बड़ा निर्जन सामने पथ है।

मंजिल के निकट ही मार्ग सर्वाधिक कठिन होता है।

सुबह के करीब ही रात और गहरी हो जाती है।

रजनीश के प्रणाम
१३-३-१९७१

—○—

"मनुष्य शुभ है या अशुभ ?" मैंने कहा : "स्वरूपतः शुभ। और, इस आशा और अपेक्षा को बड़ी होने दो क्योंकि जीवन में ऊर्ध्वगमन के लिए इससे अधिक महत्वपूर्ण और कुछ भी नहीं है।"

मेरा सन्देश छोटा-सा है— "प्रेम करो। सबको प्रेम करो। और ध्यान रहे कि इससे बड़ा कोई भी सन्देश न है, न हो सकता है।"

MY JOURNEY FROM DOUBT TO BEYOND

Bombay, June '71

I am sitting silently some where. My total inner being is watchful, is alert and alive now. I can't go back, I can't even go ahead, I can just be at the crossing, sitting somewhere like a pilgrim, a wayfarer. I have died recently to doubt and the ashes of what I was are still kept in a bundle which I'm carrying with me, to pretend a luggage what so ever. But actually if you sink your hands into it you will find nothing but a hollow, and deep, very deep at the bottom, a hole, just a little hole through which the stones of my doubt, the 'stoneness' of my mind have fallen down.

I remind of the time of doubt. It was like an open wound, a laceration, a bleeding split into my being. I was, the 'I' was the centre of the world. Whatever was coming to, whatever was going out of me had already taken the mark of my I-ness. The world as such, existence as such in its immensity and beauty and mystery was but a sealed shell to me. My mind had build up a crystalized barrier to its flowing. And I was helpless. Outside, the unbearable noise of a verbal, metallic age made out of violence; inside, the resounding echo of that noise even broadened by the distortions of my affected mind. In thirty years-time the dying process was going on successfully. A little effort more,

just a mild pushing and the life in this body would have been over. I came, just one year back, very near to it. Yet my, so to say, wordly dignity was still preventing me from uttering any word about that. I went on managing my life according to a logic whatsoever borrowed by an already traced track.

All my life had been devoted to studying, thinking, writing. I had been in the sixties what people use to define an Intellectual. But still that label was not suiting me. My tremendous thirst for knowledge had quickly turned into a reverse : not reading at all. My pretended ambition of becoming 'Somebody' had by the time being faded away. The towers and steeples of a civilization in which I had believed to recognize myself were crashingly collapsing from the heights of an elusive and inconsistent pride. The anthropocentric attitude of western mind in all its multi-dimensional expressions through Art, Philosophy, Psychology and any sort of polluting 'isms' was sticking in suspense on a narrow hedge of my brain beyond which a limitless, ever-laughing ocean of madness was stretching by all sides.

While writing a book on Aesthetics it happened to me to go through several books on Quantic Physics, Einstein's Relativity, and Heisenberg's Indetermination principle. And a opening, an unexpected, wonderful feeling of liberty arose in my mind. Here it was the reason for the limits, the

weakness of all philosophical systems based on the old, rationalistic concept of objective thinking ! Here it was the proof for the existence of the Unknown since in the very core of matter, much, much before the organizations of inorganic and organic forms there are packets of flowing energy only, hidden combinations of atomic, sub-atomic elements.....and all this mysterious reality beyond the grasping of objective experience. Human Ego and conscious mind are but limited and superficial organizers of what falls under the sense-observation whereas a deeper reality exists inside the human machine as well as the world of Form.

So it happened to me still through an intellectual approach to discover the unknown, the infinite, what is beyond and beyond the temporary solutions of the mind, even of the scientific one. And before the authoritative members of the University Commission for the getting of my professorship in Philosophy, I was totally incapable of uttering any speech, just a statue of dumbness before their subtle questions. What to meaningfully say about the known, the fictitious hypothesis of the philosophical mind if the unknown was there, in that very solemn room, immense, uninvestigated, unapproachable by logic, powerful, mysterious, actually God-like for a spontaneous feeling of the Divine was eventually arising there, Divine not as a human creation, not as a clerical prerogative or an intellectual acquaintance but the Divine as such, the mystery as such with no possible words to be

talked about. So it happened that whatever I had written on philosophical subjects was taken for granted in order to justify my silence, my non-sensly behaviour, my sudden madness.

What has happened later on after my leaving Italy belongs to a different time, a reality totally other than that of the time of doubt. 'Someone' - I would like not to pronounce His wordly name since everyone of you know Him very well—invited me to surrender. Stretched out on the abyss of the unknown I had to do nothing, to think of nothing, just to jump. In that jumping into 'dhyan', in that very surrendering I had thrown all at once away the useless fittings of my exhausted mind: problems, doubts, frustrations, fears. Who am I to be a prob-lem to my-self ? Who am I before the unknown ? What does after jumping remains of my I-ness ? I can just dance the dance of the forgetful Man, I can just play the music of silence, I can just sing the Ideas of Man as a transient, ever-waving 'leela'.

Whether to be a Sannyasi, a 20's century worldly sannyasi, means nothing but such a playing, such a doing, such a witnessing to the all family of beings to be awakened, trained, and pushed into the wandering, inner awareness then I am going perhaps to be a true sannyasi, someone who has in the land of Bharat gone veet sandeh.

Ma Veet Sandeh
Dr. Miss Grazia Marchiano
C/o Mrs. P. Sen
8,Shanti Kutir, Marine Drive
Bombay-20

Perm. Add.
112, Via Archimede
00197 Roma
Italy.

रजनीश, बोलो न !

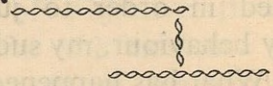

—स्वामी अगेह भारती

प्रियतम !
क्या तुम्हीं नहीं हो योगिराज कृष्ण
जो सर्व के प्रति अपने कर्तव्य हेतु,
गोपियों को विरहाकुल – तड़पती छोड़
ब्रज से मथुरा जा बसे थे—
संयोग–वियोग से सर्वथा अनस्पर्शित, असंपृक्त—
और क्या हमीं नहीं हैं वे गोपिकाएं,
जिनके लिए तुम्हारे बम्बई चले जाने पर
अब यह नगर, तुम्हारी रास लीलाओं की स्मृतियों के घर के सिवा
कुछ नहीं रह गया है !!
मेरे परम स्नेही !
क्या ये नगरवासी सदा ही
हमें दिग्भ्रमित समझते रहेंगे
और तुम्हें थोड़ो उमर का एक नादान ?
यह सब क्या है मेरे नाथ !
मेरे प्रभु !
मेरे निर्मोही !
क्या तुम्हें लेकर हमारा उपहास ही होता रहेगा ?
कई बेचारे कहते हैं—
तुम जादू जानते हो
और सबको बस में कर
मनमाना करते हो;
मैं उन्हें कहता हूं—
क्या 'प्रेम' से बढ़कर भी कोई जादू होता है ?
पर वे नहीं समझते,
इस खुली हुई बात को भी नहीं समझते...!
मेरे विचित्र !

सच बताना, इस सृष्टि में कोई अथवा कुछ भी है ऐसा
जो तुम्हारे विरोध में हो !
क्या तुम्हारा विरोध सम्भव है ?
फिर, क्या तुम्हीं अपना विरोध करते हो
और तुम्हीं अपने को प्रेम...?और क्या तुम्हारे प्रति किया गया विरोध
भी वस्तुतः प्रेम ही नहीं है ?
क्या अपनी यह लीला कभी सब पर प्रगट न कर दोगे ?
मेरे प्रियतम ! बोलो न !!

—: श्री रजनीश के प्रति :—

—शिव

क्या कहूं ?
अजीब संकट में हूं।
तुम्हारे योग्य सम्बोधन ढूंढ़ता हूं
और हार जाता हूं।
कुछ लोग तुम्हें 'प्रिय' कहते हैं
मगर मैं कैसे कहूं ?
क्योंकि मेरे भीतर 'प्रिय' कहने जैसा
प्रेम कहां है ?
कुछ लोग तुम्हें 'पूज्य' कहते हैं,
वह भी मैं कैसे कहूं ?
क्योंकि मेरे भीतर किसी को पूज्य समझने जैसी मूर्च्छा भी नहीं है,
फिर क्या तुम्हें मनुष्य कहूं ?
मगर दुनिया जिन्हें मनुष्य कहती है
वैसे तो तुम नहीं हो !
फिर क्या तुम्हें परमात्मा कहूं ?
मगर दुनिया तो मर गये लोगों को ही
इस पद पर विभूषित करती है
और तुम तो जिन्दा हो !
आह ! मैं तुम्हें संबोधित भी क्यों करूं ?

———

'जीवन ही है प्रभु'

जूनागढ़ साधना शिविर में भगवान श्री द्वारा दिया गया प्रथम प्रवचन

संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़

जीवन के गणित के बहुत अद्भुत सूत्र हैं। पहली अत्यन्त रहस्य की बात तो यह है कि जो निकट है, वह दिखाई नहीं पड़ता है। जो और भी निकट है, उसका पता भी नहीं चलता है। और जो मैं स्वयं हूं, उसका तो स्मरण भी नहीं आता है। जो दूर है वह दिखाई पड़ता है—जो और दूर है, और साफ दिखाई पड़ता है। जो दूर है, वह निमन्त्रण भी देता है, बुलाता भी है, पुकारता भी है। चाँद बुला रहा है आदमी को, तारे बुला रहे हैं। जगत् की सीमायें बुला रही हैं, 'एवरेस्ट' की चोटियां बुलाती हैं। प्रशांत महासागर की गहराइयां बुलाती हैं, लेकिन आदमी के भीतर जो है, वहां की कोई पुकार सुनाई नहीं पड़ती है।

मैंने सुना है, सागर की मछलियां एक दूसरे से पूछती हैं, 'सागर कहां है ?' सागर में ही वे पैदा होती हैं, सागर में ही जीती हैं और सागर में ही मिट जाती हैं, लेकिन वे मछलियां पूछती हैं कि सागर कहां है। वे आपस में विवाद भी करती हैं कि सागर कहां है। मछलियों में ऐसी कथायें भी हैं कि उनके किन्हीं पुरुखों ने सागर को कभी देखा था। मछलियों में ऐसे महात्मा हो चुके हैं, जिनकी स्मृतियां रह गयीं हैं, जिन्होंने सागर का अनुभव किया था। और बाकी मछलियां सागर में ही जीती हैं, सागर में ही रहती हैं, सागर में ही मरती हैं और उनको याद करती हैं, जिन पुरुखों ने सागर का दर्शन किया था।

मैंने सुना है—"सूरज की किरणें आपस में पूछती हैं दूसरी किरणों से– सखी प्रकाश को देखा है ? सुनते हैं कहीं सूरज है और सुनते हैं, प्रकाश है, लेकिन कहां है कुछ पता नहीं। और किरणों में भी कथायें हैं उन पुरुखों

की, जिन्होंने सूरज को देखा था और प्रकाश का अनुभव किया था। धन्य थे वे लोग ! धन्य थी वे किरणें ! जिन्होंने प्रकाश को अनुभव किया और अभागी हैं वे किरणें जो विचार कर रही हैं, जो दुखी हैं— जो पीड़ित हैं और परेशान हैं।" मछलियों की बात समझ में आती है कि पागल हैं और सूरज की किरणों की बात भी समझ में आ जाती है कि बड़ी पागल हैं, **लेकिन आदमी की बात आदमी को समझ नहीं आती कि हम भी बड़े पागल हैं। ईश्वर में ही जीते हैं, ईश्वर में ही जन्म लेते हैं, ईश्वर में ही स्वास-स्वास है, ईश्वर में ही मृत्यु है, ईश्वर में ही उठना है, ईश्वर में ही विलीन हो जाना है। और हम खोजते हैं और पूछते हैं कि ईश्वर कहां है ?** और हम उन पुरुखों की याद करते हैं, जिन्होंने ईश्वर का दर्शन किया है। और हमने उन लोगों की मूर्तियां बनाके मंदिरों में स्थापित किया है, जिन्होंने ईश्वर को जाना। फिर मछलियों पर हंसना ठीक नहीं। फिर मछलियों का व्यंग करना ठीक नहीं। फिर मछलियां भी ठीक ही पूछती हैं कि सागर कहां है ? **स्वाभाविक है, मछलियों को सागर का पता न चलता हो, क्योंकि जिससे हम कभी बिछुड़ते ही नहीं, उसका पता ही नहीं चलता है। अगर कोई आदमी जन्म से ही स्वस्थ हो मरने तक, तो उसे स्वाथ्य का कभी भी पता** नहीं चलेगा। स्वास्थ्य का पता चलना भी बड़ी दुर्भाग्य की बात है कि बीमार होना जरूरी है। स्वास्थ्य से टूटें, अलग हो जायँ तो ही स्वास्थ्य का पता चलता है।

और मैंने सुना है, भगवान न करे कि यह बात आपके संबंध में भी सच हो। मैंने सुना है कि बहुत से लोग जब मरते हैं, तभी उनको पता चलता है कि वे जीते थे। क्योंकि जब तक मरे नहीं तब तक कैसे जीवन का पता चल सकता है ! **जीवन के गणित का पहला रहस्यपूर्ण सूत्र यह है कि यहाँ जो सबसे ज्यादा निकट है, वह दिखाई नहीं पड़ता। यहाँ जो उपलब्ध ही है, उसका पता नहीं चलता। जो दूर है, उसकी खोज चलती है। जो नहीं मिला है, उसके लिए हम तड़पते हैं, भागते हैं, दौड़ते हैं और जो मिला ही हुआ है, उसे हम भूल जाते हैं, क्योंकि उसे याद करने का मौका ही नहीं आता। परमात्मा का अर्थ, प्रभु का अर्थ वो है, जिसमें हम आते हैं और जिसमें हम चले जाते हैं।** कोई नास्तिक भी ऐसे प्रभु को इन्कार नहीं कर सकता है। क्योंकि निश्चित ही हम कहीं से आते हैं और कहीं चले जाते हैं। सागर पर लहर उठती है और वापिस सागर में खो जाती है। तो लहर जहां

से आती है और खो जाती है, वो भी तो होगा ही। और जब लहर नहीं थी, तब भी वो था और जब लहर नहीं रह जायगी तब भी होगा। तभी तो लहर उससे उठ सकती है और उसी में खो सकती है। नास्तिक भी यही कहेगा कि हम कहीं से आते हैं और फिर कहीं खो जाते हैं।

और भी एक बात ध्यान रख लेने की है कि जहां से हम आते हैं, वहीं खो जाते हैं। और कहीं खोयेंगे भी कैसे ? लहर सागर से उठेगी तो सागर में ही तो विलीन होगी। और तूफान और आँधियां हवा में उठेंगी तो हवाओं में ही तो बिखर जायेंगी। और वृक्ष मिट्टी से पैदा होंगे, फूल खिलेंगे तो फिर बिखरेंगे कहां, खोयेंगे कहां ? वापिस मिट्टी में गिरेंगे और सो जायेंगे।

जीवन का दूसरा सूत्र आपको कहना चाहता हूं। जीवन के गणित का-वह यह है कि जहाँ से हम आते हैं, वहाँ हम वापिस लौट जाते हैं। उसको क्या नाम दें जहां से हम आते हैं और जहां हम वापिस लौट जाते हैं ? कोई नाम काम चलाने के लिये दे देना जरूरी है, उसीको मैं 'प्रभु' कहूंगा, जहां से हम आते हैं और जहां हम लौट जाते हैं। इसलिये मेरे प्रभु से किसी का भी झगड़ा नहीं हो सकता इस जमीन पर— न कभी हुआ है, न कभी हो सकता है, क्योंकि प्रभु से मैं इतना ही मतलब ले रहा हूं, 'The Original Source' वह जो मूल आधार, कहीं से हम आते ही होंगे। यह सवाल नहीं है कि कहां से, कहीं से हम आते ही होंगे और कहीं हम खो जाते होंगे। और जहां से आना होता है, वहीं खोना होता है, क्योंकि जिससे हम उठते हैं, उसी में बिखर सकते हैं। हम और कहीं बिखर नहीं सकते। असल में जिससे हमने जीवन पाया है, उसी को लोटा देना होता है। प्रभु मैं उसको कहूंगा इन आने वाले दिनों में, उसकी व्याख्या कर लेनी ठीक है, अन्यथा पता नहीं आप प्रभु से क्या सोचें ! प्रभु मैं उसको कहूंगा, वह जो मूल आधार है, मूल स्रोत है। जहां से सब निकलता है और जहां सब खो जाता है। ऐसा प्रभु कहीं आकाश में बैठा हुआ नहीं हो सकता है। ऐसे प्रभु की कोई सीमा नहीं हो सकती, ऐसे प्रभु का कोई व्यक्तित्व नहीं हो सकता है। कोई आकृति, कोई रूप, कोई आकार नहीं हो सकता। क्योंकि जिससे सब आकार निकलते हों, उसका खुद का आकार नहीं हो सकता है। अगर उसका भी अपना आकार हो तो उससे फिर दूसरे आकार न निकल सकेंगे। आदमी से आदमी पैदा होता है क्योंकि, आदमी एक आकार है। और आम के बीज से आम का पौधा पैदा होता है

क्योंकि, आम का बीज एक आकार है। पक्षियों से पक्षी पैदा होते हैं। सब चीजें अपने आकार से पैदा होती हैं। लेकिन ईश्वर से सब पैदा होता है। इसलिए ईश्वर का कोई आकार नहीं हो सकता है। वह आदमी के आकार का नहीं हो सकता, यह आदमी की ज्यादती है, अन्याय है कि अपने आकार में उसने—भगवान की मूर्तियां बना रखी हैं। **यह आदमी का अहंकार है कि उसने भगवान को भी अपनी शक्ल में बनाके रख दिया है। यह आदमी का दंभ है कि वह सोचता है, भगवान भी होगा तो उसे आदमी जैसा ही होना चाहिए। फिर आदमी भी बहुत तरह के हैं। इसलिए बहुत तरह के भगवान हैं। चीनियों के भगवान के गाल की हड्डियां निकली हुई होंगी, नाक चपटी होगी। चीनी सोच ही नहीं सकते, भगवान की नाक और चपटी न हो** और नीग्रो के भगवान के ओंठ बड़े चौड़े होंगे और बाल घुंघराले होंगे और शक्ल काली होगी। **नीग्रो सोच ही नहीं सकता है कि भगवान गोरा भी हो सकता है।** गोरा और भगवान! गोरा शैतान हो सकता है। गोरा भगवान कैसे हो सकता है। बहुत तरह के लोग हैं इसलिये बहुत तरह की शक्लों में भगवान का निर्माण कर लिया है। आदमियों के बनाये गये इस भगवान के संबंध में मैं कुछ भी नहीं कहूंगा। मैं तो उस भगवान के संबंध में कहूंगा, जो किसी का बनाया हुआ नहीं है। 'अनक्रियेटेड' है जिससे सब बनते हैं और जिसमें सब बिगड़ जाते हैं। लेकिन जो न कभी बनता और न कभी मिटता है।

आदमी अपनी शक्ल में भगवान को बना लेता है। अगर वृक्ष भगवान के संबंध में सोचते होंगे तो भूल के भी आदमी की शक्ल में न सोचते होंगे। आदमी उनको शैतान मालूम पड़ता होगा। न मालूम कब आके दरख्तों की शाखायें काट लेता है और न मालूम कब फल पकने भी नहीं पाते और तोड़ लेता है। तो वृक्ष अगर सोचते होंगे तो आदमी की शक्ल में शैतान को सोचते होंगे। सारी जमीन से वृक्षों को काट डाला आदमी ने, वृक्ष कभी भी आदमी की शक्ल में भगवान को नहीं सोच सकते। और अगर वृक्षों के नीचे आदमी ने अपनी शक्ल के भगवान बिठा दिये होंगे तो वृक्ष बड़े नाराज होते होंगे कि शैतानों ने अपनी शक्ल भी यहां लगा रखी है। नहीं, वृक्ष के लिये यह संभव नहीं है कि वह आदमी की शक्ल में भगवान का विचार कर सके।

सारी दुनिया में भगवान के लिये झगड़ा इसलिए है, हमने अपनी-शक्लों में उसे ढाल लिया है। इसलिए आदमी की शक्ल बदलती जाती है तो भगवान की शक्ल भी हमें बदलनी पड़ती है। रोज-रोज उसमें बदलाहट करनी पड़ती है। अगर पांच हजार साल पहले के भगवान देखें तो उसकी शक्ल और है। उसके ढंग, रीति-रिवाज और हैं। वह पांच हजार साल पहले के आदमी की शक्ल में बनाया गया है। वह पांच हजार साल पहले का भगवान यह कहता है कि अगर कोई एक आंख-फोड़ेगा किसी की, तो हम उसकी दो आंख फोड़ देंगे। वह पांच हजार साल पहले का भगवान यह कहता है कि अगर किसी ने जरा सी गलती की तो हम नरक की अग्नि में जलायेंगे उसको—सड़ायेंगे उसको। उस दिन किसी ने शक भी न किया कि ऐसा कैसा भगवान है जो इस तरह की बेहूदी बातें बोलता है! —असल में आदमी खुद ऐसी बातें उस समय बोल रहा था—इसलिये 'उस' पर शक नहीं हुआ उसे। उसने अपनी शक्ल में भगवान को बना लिया, फिर आदमी की समझ बढ़ी और ऐसे आदमी पैदा हुए, जिन्होंने कहा; जैसे, 'जीसस' ने कहा कि कोई अगर तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर देना। जब अच्छे आदमी का यह सबूत बना, अच्छे आदमी का यह प्रमाण बना और आदर्श बना कि कोई तुम्हारे गाल पर चांटा मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर देना, तो **भगवान को बदलना पड़ेगा, क्योंकि अच्छा आदमी जब इतना अच्छा है कि एक चांटा मारने पर दूसरा गाल कर देता है तो उस भगवान के सम्बन्ध में हम क्या सोचेंगे जो कहता है कि अगर एक आंख किसी ने किसी की फोड़ी तो उसकी दो आंख फोड़ दी जायँगी। और ईंट का जवाब पत्थर से दिया जायगा। और नरक की अग्नि में सड़ाया जायगा। यह भगवान फिर बहुत कठोर मालूम पड़ेगा।** यह तो आदमी से भी गया बीता मालूम पड़ेगा। इसमें क्षमा तो मालूम नहीं पड़ती है। यह भगवान जिसने नरक को ईजाद किया, इस भगवान में क्षमा तो मालूम नहीं पड़ती। फिर उन्हें भगवान की शकल बदलनी पड़ती है। **इसलिए हर युग भगवान की शकल बदलता है। पुरानी शकलें 'आउट आफ डेट' हो जाती हैं, पुरानी पड़ जाती हैं। फिर नयी शकल बनानी पड़ती है। भगवानों के भी बहुत-फैशन रहे हैं दुनिया में। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं कि वह हमेशा पुरानी फैशनों से जकड़े रहते हैं, इसलिए दुनिया में इतने धर्म हो गये हैं— वो अलग-अलग युग के फैशन हैं और अभी तक पकड़े हुए हैं लोगों को।** इसलिये इतने धर्म हो गये हैं। लेकिन मैं इन भगवानों की बात नहीं करूंगा। क्योंकि ये कोई

भगवान ही नहीं हैं। मैं तो उस प्रभु की बात करूंगा, जो जीवन का मूल स्रोत है। मैं तो उस प्रभु की बात करूंगा, जो जीवन ही है। और जीवन से अलग करके सोचना परमात्मा को—बड़ी भूल है। असल में हम प्रतीकों में सोचते हैं, उन प्रतीकों के कारण भूल हो जाती है।

पुरानी से पुरानी किताबें यह कहती हैं कि जैसे—कुम्हार घड़े को बनाता है, ऐसे ही भगवान जगत् को बनाता है। असल में जब यह बात कही गयी होगी, तब कुम्हार सबसे बड़ा कारीगर रहा होगा। उससे बड़ा कोई कारीगर न रहा होगा, नहीं तो भगवान की कुम्हार से अगर कोई तुलना करता तो झगड़ा-झंझट हो सकता था। जिस समय की यह बात होगी, कम से कम दस हजार साल पुरानी बात होगी, उस समय कुम्हार सबसे बड़ा वैज्ञानिक, सबसे बड़ा कारीगर माना जाता होगा जिसने मिट्टी का घड़ा बना दिया। तो हमने भगवान का कुम्हार से तालमेल बिठा लिया। हमने कहा भगवान कुम्हार जैसा होना चाहिए, जो सारी दुनिया को बनाता है। चाक पर चढ़ाता है और दुनिया को रचता है। असल में संसार शब्द का मतलब भी चाक ही होता है, 'व्हील'। संसार का मतलब होता है कुम्हार का चाक, जिस पर भगवान घड़े मिट्टी से घड़ता रहता है, फिर घड़े मिटते जाते हैं, मिट्टी में चले जाते हैं, वह दूसरे घड़े बनाता रहता है। लेकिन इस प्रतीक ने बड़ा नुकसान पहुंचाया है। और मनुष्य जाति के द्वारा कुछ बुनियादी भूलों में से एक भूल यह पकड़ ली गयी—इस प्रतीक की। इससे खतरा हो गया, एक कि कुम्हार अलग है और घड़ा अलग है। इससे ऐसा लगा कि संसार अलग है और परमात्मा अलग है। यह प्रतीक खतरनाक सिद्ध हुआ। नहीं, मैं किसी दूसरे प्रतीक की बात करूं, क्योंकि मुझे यह प्रतीक उचित नहीं मालूम पड़ता। एक आदमी चित्र बनाता है। तो जब चित्रकार चित्र बनाता है तो चित्रकार अलग होता है, चित्र अलग होता है। चित्र बनता जाता है और चित्रकार अलग होता जाता है। जब चित्र पूरा बन जाता है तो चित्रकार बिलकुल अलग हो जाता है और चित्र की अपनी जिंदगी शुरू हो जाती है। फिर चित्रकार मर जाय तो चित्र नहीं मरेगा। वह चित्रकार बीमार पड़ जाय तो चित्र बीमार नहीं पड़ेगा और चित्रकार पागल हो जाय तो चित्र पर कोई असर नहीं पड़ेगा। चित्र का अपना अस्तित्व अलग हो गया। पुराने लोगों ने अब तक परमात्मा और संसार के बीच ऐसा ही सम्बन्ध सोचा था कि उसने संसार को बनाया और अलग हो गया। संसार का अपना अस्तित्व हैं और वह अलग बैठ गया है। उसे

हमें खोजना पड़ेगा कि वह कहां बैठ गया है। नहीं, मैं कोई दूसरा प्रतीक लेना चाहता हूं, ताकि मेरी बात ख्याल में आ सके कि वह नृत्यकार है, चित्रकार नहीं, एक नर्तक है, एक नाचने वाला और नृत्यकार नाच रहा है। जब नृत्यकार नाचता है तब नृत्यकार और नृत्य अलग-अलग नहीं होते। और नृत्यकार अगर रुक जायगा तो नाच भी रुक जायगा। और नृत्यकार मर जायगा तो नाच भी मर जायगा। और ऐसा नहीं है कि नर्तक को घर के बाहर छोड़ आओ और उसके नाच को घर ले आओ। नर्तक और नृत्य एक है। चित्रकार और चित्र एक नहीं है। कुम्हार और घड़ा एक नहीं है। इसे थोड़ा समझ लेना कि नर्तक जब नाच रहा है, तब नृत्य है। जब नहीं नाच रहा है तब नृत्य नहीं है। नृत्य को अलग नहीं किया जा सकता। **मेरे लिये प्रभु, मेरे लिए परमात्मा एक नर्तक है। चित्रकार नहीं, एक कुम्हार नहीं। सारा जीवन उसका नृत्य है। वो इससे अलग नहीं है। एक क्षण को भी अलग हो नहीं सकता है, हो जाय तो नृत्य बन्द हो जाय।** इसलिये जब हमने पुराने प्रतीक के आधार पर परमात्मा को अलग कर लिया तो हमारी पूरी दिशा बदल गयी। उसकी खोज थी और उस खोज के बड़े घातक परिणाम हुए। क्योंकि एक तो वो अलग था ही नहीं और हमने उसे अलग मान के अलग खोजना शुरू कर दिया। इसलिये उसका मिलना मुश्किल हो गया। वह कभी भी नहीं मिलेगा। अगर कोई नाचते हुए नृत्यकार को देख के यह सोचे कि यह तो रहा नृत्य, अब नृत्यकार कहाँ है, तो कोई नृत्यकार को खोजने जाता है तो वह कभी भी नृत्यकार को नहीं खोज पायेगा, क्योंकि वो नृत्य में ही मौजूद है। वह नृत्य की जो लयबद्धता है, उसमें ही मौजूद है। वह जो नृत्य की गति है, उसी में मौजूद है। हो सकता है, उन्हीं घूंघरु की आवाज सुनाई पड़ती हो, हाथ-पैरों की गति दिखाई पड़ती है और नृत्यकार दिखाई भी नहीं पड़ता, क्योंकि नृत्य बहुत तेज है। लेकिन हम कहते हैं, यह तो रहा नृत्य, नृत्यकार कहाँ है ? तो हम नृत्यकार को खोजने निकल जायें फिर हम नृत्यकार को कभी न खोज पायेंगे, क्योंकि वह वहीं था, नृत्य में, नाच में।

आदमी ने जो प्रतीक चुन लिया एक बार कि परमात्मा अलग और संसार अलग, उससे सब गड़बड़ हो गयी है। जो खोजने गये वह खोज न पाये क्योंकि वह खोजते कैसे ? जो उसे खोजने गये उन्होंने संसार की तरफ पीठ कर ली, फिर खोजने गये, क्योंकि उनका संसार तो अलग है भगवान से।

हम तो भगवान को खोजना चाहते हैं। तो उन्होंने फूलों पर आँख बंद करली, उन्होंने तितलियों पर आंख बंद करली, उन्होंने पक्षियों के गीतों से कान बंदकर लिये, उन्होंने वृक्षों को देखना बंद कर दिया, उन्होंने हवाओं से दोस्ती छोड़ दी, उन्होंने पृथ्वी से संबंध तोड़ लिया, उन्होंने मनुष्यों की तरफ पीठ फेरली, उन्होंने सब तरफ से अपने को बंद कर लिया। उन्होंने कहा—यह तो संसार है, हम तो भगवान को खोजने जाते हैं। बस, वे कहीं खोजने नहीं गये, वे सिर्फ आंख बंद करके मरने लगे। वे आंख बंद करके अपने भीतर खतम होने लगे और सड़ने लगे। वह तो यहीं सबमें मौजूद था। लेकिन हमने जो सोचा उसमें भूल हो गयी है। तो एक भूल यह हुई कि जो उसे खोजने गये वो उसे खोज न पाये। फिर दूसरी भूल यह हुई कि जब कोई खोजने चला जाय, अगर खोज ही न पाये, खोज ही न पाय तो आखिरी मनुष्य के मन के पास एक उपाय है कि जब वह बिलकुल हार जाय, न खोज पाय, न खोज पाय, न खोज पाय तो वह कल्पना करले और पाले। अगर आप दिन भर भूखे रहे हैं और भोजन न खोज पायें तो रात सपने में भोजन कर लेंगे। **एक आदमी किसी को प्रेम करता है और उसे न उपलब्ध कर पाये तो पागल हो जायेगा। और फिर उपलब्ध कर लेगा पागल होके। फिर वह उसी से बातें करने लगेगा, उसके साथ जीने लगेगा। फिर सारी दुनिया से इसे मतलब न रहा। उसे अपनी प्रेयसी मिल गयी, अपना प्रेमी मिल गया।** उसने कल्पना कर ली। मनुष्य के मन ने एक सुविधा जुटायी है आदमी को कि जिसे हम न खोज पायें उससे भी सपने में मिला जा सकता है। जो लोग ईश्वर को इस भांति खोजने गये और नहीं खोज पाये, नहीं खोज पाये फिर उन्होंने अपना कल्पित ईश्वर खड़ा कर लिया। फिर वो उसके साथ बातें करने लगे, उसके साथ खेलने लगे, नाचने लगे, यह सब कुछ करने लगे। वे सारी की सारी बातें एक दम विक्षिप्तता की बातें हैं। मन की रुग्णता की बातें हैं। मन के सपनों की बातें हैं, उनसे परमात्मा का कोई सम्बन्ध नहीं।

दूसरा दुष्परिणाम यह हुआ कि जिन लोगों ने खोज-बीन की और नहीं पाया, उन्होंने कहा कि ईश्वर है ही नहीं। हम खोज पर ही गलत चले गये। हम फिजूल मेहनत में पड़ गये, ईश्वर कहीं है ही नहीं। सब खोज लिया। योग देखा, प्रार्थना देखी, ध्यान देखा, साधना की, तप किया, उपवास किया, कहीं भी नहीं है। उन लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि ईश्वर है ही नहीं। इस जगत् में दो तरह के धार्मिक लोग हुए। एक, जिन्होंने

कल्पना करली ईश्वर की और एक, जिन्होंने इंकार ही कर दिया। यह दोनों बातें महंगी और खतरनाक हो गयीं। जबकि ईश्वर यहां मौजूद था। सदा से मौजूद है। नृत्य में नृत्यकार मौजूद है, उसे नृत्य में ही खोजना पड़ेगा। और नृत्य में खोजने का एक ही ढंग है कि हम नृत्य से भागें ना, नृत्य के प्रति हम जागें। हम नृत्य को पहचानें। और जितना हम नृत्य को पहचानेंगे और जितना गहरा उसमें प्रवेश करेंगे, उतना ही नर्तक उपलब्ध होने लगेगा। धीरे-धीरे नृत्य तो खो जायेगा, नर्तक रह जायगा। धीरे-धीरे हम जानेंगे कि नर्तक ही सत्य है। नृत्य तो खेल था, नृत्य तो लीला थी। लेकिन नृत्य में ही छिपा है और बड़ा विराट नृत्य। और एक बात और ख्याल में रखलें कि नृत्य कुछ ऐसा है कि हम भी उसके बाहर नहीं है। हम भी उस नृत्य में ही हिस्से हैं। तो मैं दूसरी बात यह कहना चाहता हूं कि मामला कुछ ऐसा नहीं है कि नर्तक का हाथ ही उत्सुक हो गया है कि मैं जानूं कि नर्तक कहां है। हम भी कुछ अलग अगर नृत्य के होते तो आसानी हो जाती, हम भी नृत्य के हिस्से और भाग हैं। जैसे कि नाचने वाले का हाथ यह पूछने लगे कि नर्तक कहां है और खोजने लगे कि नर्तक कहां है? जैसे नाचने वाले की आंखें यह पूछने लगें कि नर्तक कहां खो गया? नृत्य तो दिखाई पड़ रहा है, नर्तक कहां है? हम उसके ही हाथ उसकी ही आँखें हैं। हम कुछ चाहें तो भी उससे अलग नहीं हो सकते। असल में जिससे हम चाह के भी अलग नहीं हो सकते वही परमात्मा है। लोग मुझसे पूछते हैं कि परमात्मा को कहां खोजें? मैं उनसे कहता हूं कि पहले मुझे यह बताओ तुमने उसे खोया कब और कहां? क्योंकि खोजा उसे जा सकता है, जिसे खो दिया हो। परमात्मा को हम खो ही नहीं सकते हैं। उपाय नहीं है खोने का, मार्ग नहीं है खोने का। हम कैसे खोयेंगे उसे! ज्यादा से ज्यादा हम भूल सकते हैं, खो नहीं सकते। भूलने और खोने में बड़ा फर्क है। हम भूल सकते हैं। भूल तो हम अपने तक को सकते हैं।

पिछले महायुद्ध में ऐसा हुआ कि एक आदमी युद्ध के मैदान पर था, चोट खा गया गोली की, बेहोश हो गया। जब होश आया तो वह अपने को भूल चुका था। उसे अपना नाम याद न रहा। लेकिन सैनिकों को नाम की कोई खास जरूरत भी नहीं होती। उसका नंबर से पता चल जाता है। लेकिन युद्ध में कहीं उसका नम्बर भी गिर गया। जब वह लाया गया स्ट्रेचर पर तो उसका नम्बर ही नहीं था। जब वह होश में आया तो उससे पूछा—तेरा नाम क्या है? उसने कहा—यही मैं आपसे पूछना चाहता हूं, मेरा नाम

क्या है ? मैं किसका बेटा हूं ? मैं किसका पति हूं ? मैं किसका पिता हूं ? मैं हूं कौन ? मेरा नम्बर क्या है ? मैं किस रेजीमेन्ट का हूं ? पहले तो लोगों ने समझा मजाक है, लेकिन वह मजाक न था। उसके मस्तिष्क को चोट लग गयी थी। वह भूल गया था। फिर तो बड़ी मुश्किल हुई। कोई उपाय न रहा कि कैसे पता चले कि वह कौन है ! न मालूम कितने लोग युद्ध में खो चुके थे। वह आदमी कौन है ? यह है कौन ? इसका कैसे पता लगे ? फिर किसी ने सुझाव दिया कि इसे गांव-गांव में घुमाया जाय। अपने गांव को शायद यह पहचान ले। उसे गांव-गांव में ले जाया गया। वह स्टेशनों पर उतर के खड़ा हो जाता और देखता रहता। वो लोगों को देखता लेकिन उसे कुछ पहचान न आता। फिर तो थक गये उसको घुमाने वाले। लेकिन एक नगर में, जैसे वह स्टेशन पर उतरा, उसने कहा, अरे मेरा गांव ! वह तो भागने लगा। उनके लिये रुका भी नहीं, जो उसके साथ आये थे। उन्होंने कहा, रुको भी, लेकिन वह तो भागा, वह तो सीढ़ियां पार उतर गया था। वो उसके पीछे भागे, वह तो भागा जा रहा था। वह कहता था, अरे ! मेरा गाँव, मेरी गली, मेरा घर, मेरी मां। वह जाकर अपनी माँ के पैरों पर गिर पड़ा। उसके साथी भागे हुए पीछे पहुंचे। उसके साथियों ने कहा तुम तो बिलकुल खो ही गये थे, तुमने कैसे खोज लिया ? उसने कहा—खो नहीं गया था। खो गया होता तो फिर तो खोजना मुश्किल था, सिर्फ भूल गया था, उसकी याद आ गयी। परमात्मा की खोज नहीं करनी है, सिर्फ याद करनी है। लेकिन याद के नाम से भी बड़े धोखे चल रहे हैं, उसको लोग प्रभु स्मरण कहते हैं। कोई प्रभु को जपता हो तो कहते हैं, प्रभु स्मरण कर रहे हैं। कोई कुछ, कोई कुछ और कर रहा है। ये कहते हैं, हम स्मरण कर रहे हैं। स्मरण शब्द बहुत कीमती है। ऐसे तोतों की तरह नाम जपने से कोई स्मरण नहीं होता। स्मरण का मतलब है, 'रिमेम्बरिंग' स्मरण का अर्थ है—स्मृति—उसकी याद आ जानी। लेकिन प्रभु नाम जपने से उसकी याद कैसे आ जायगी ! और अगर आ गयी है याद तो अब क्यों जपे चले जा रहे हो ? (हास्य, तालियां) अगर प्रभु कहने से याद आ सकती तो एक बार कहने से आ जाती और जब एक बार कहने से नहीं आती तो दूसरी बार कहने से कैसे आ जायगी ! लेकिन लाख--लाख, करोड़—करोड़ जप कर रहे हैं लोग। हिसाब रख रहे हैं। एक करोड़ बार चिल्ला चुके और अभी याद नहीं आ पायी ! अभी यह कह रहे हैं, अगली साल फिर एक करोड़ जप करलें।

मैं एक गाँव गया था। वहां एक लाइब्रेरी बनी हुई थी एक सज्जन ने और सज्जनों की तो कमी नहीं है हमारे देश में (हास्य) उनका काम ही यह है, उन्होंने जीवन अर्पित कर दिया है इसके लिए। न मालूम कितने लोगों को लगाकर वह प्रभु–प्रभु लिखवाते रहते हैं। और वह किताबें भर गयी हैं, हजारों लाखों कापियां भर गयी हैं। और सारे हिन्दुस्तान में उसके भक्त हैं, जो प्रभु–प्रभु लिखके वहां भेजते रहते हैं। और वहां लाय–ब्रेरी बढ़ती जा रही है, वह कहते हैं, इतने अरब हो गये नाम, इतने खरब हो गये नाम। वो मुझे भी ले गये, मैंने कहा कि नाम कितने ही खरब हो गये, याद आयी कि नहीं ? नाम लेने से कैसे याद आ जायगी ! सच तो यह है कि जिसकी हमें याद ही नहीं उसका नाम भी हमारे पास कैसे हो सकता है ! प्रभु, कौन कहता है कि उसका नाम है ? कैसे पहचाना ? कौन सा प्रमाण पत्र है ? कौन कहता है कि यह उसका नाम है ? और कौन कहता है कि वह उसका नाम है ? कैसे पहचाना यह नाम ! कैसे पहचान लिया ? हां, याद आ जाय तो शायद नाम भी आ जाता। लेकिन याद तो आयी नहीं, हम नाम से याद लाने की कोशिश कर रहे हैं। नहीं, प्रभु स्मरण का बहुत और ही मतलब है। प्रभु स्मरण का अर्थ प्रभु नाम की रटन लगाना नहीं है। प्रभु स्मरण का अर्थ है कि यह जो नृत्य चल रहा है, यह जो जीवन की विराट लीला चल रही है, इसके प्रति हम बोधपूर्ण हो जायँ। यह हमें दिखाई पड़ने लगे, यह हमें अनुभव होने लगे, इसकी हमें प्रतीति होने लगे कि यह हो रहा है। जब फूल खिले तो ऐसे ही न खिल जाय, हमें फूल खिलता हुआ मालूम पड़े। और जब आकाश में बादल चलें तो ऐसे ही न गुजर जायँ बिना पहचानें, हम इन्हें देख पायें और पहचान पायें। हमारे पास के जब कोई गुजरे तो ऐसे ही न गुजर जाय, उसके भीतर जो है, उसका थोड़ा सा स्पर्श हमें हो सके। और जिंदगी में चारों तरफ वह मौजूद है।

उसके स्मरण का अर्थ बहुत दूसरा है। उसके स्मरण का मतलब, इस बात का बोध कि हम जिससे आये हैं, वह चारों तरफ मौजूद है। और अगर इसे हम समझ पायें तो इस बोध में कोई कठिनाई नहीं है। हमने उसे खो नहीं दिया है। हम उसे कितना ही खो दें, वह तो हमें खोता ही नहीं हैं। **असल में जिंदगी में जो भी महत्वपूर्ण है,.....परमात्मा ने हमें स्वयं उसे याद रखने की जरूरत नहीं समझी है। श्वास चलती रहती है,**

आपको याद रहे न रहे। अगर आपके याद रखने पर श्वास चलती हो तो जिंदगी में कई बार आदमी मर जाय। आपको याद रखने की जरूरत नहीं, श्वास चलती रहती है, चलती रहती, चलती रहती है। आप भूल जाते हैं तों भी चलती रहती है। बल्कि सच तो यह है कि आप की स्मृति और आपकी श्वास का कोई संबंध ही नहीं है। आप खाना खा लेते हैं और पचा लेते हैं और पचाने का आपको कभी पता नहीं चलता और बड़ा काम पेट में चलता रहता है। वैज्ञानिक तो कहते हैं, इतनी बड़ी फेक्टरी एक आदमी के पेट में लगी है कि अगर हम इतना इन्तजाम, रोटी से खून बनाने का इन्तजाम अगर बाहर करें तो कई मील के घेरे में हमें इन्तजाम करना पड़े फेक्टरी का। और इतना शोर-गुल मचे, जिसका कोई हिसाब नहीं। लेकिन..... हमारे भीतर जो चुपचाप काम चल रहा है। इतना अद्‌भुत है जगत कि इसमें चुपचाप बड़े से बड़े तारे पैदा होते हैं और विलीन हो जाते हैं। उनका शोर-गुल भी नहीं होता, उनका कोई पता भी नहीं चलता। जिंदगी में जो भी महत्वपूर्ण है, यह आपके बिना जाने चुपचाप चलता रहता है। लेकिन, अगर हमें उसका स्मरण आ जाय, जो जिंदगी में चारों तरफ चुपचाप चल रहा है, अगर उसकी पग-ध्वनियां हमें सुनाई पड़ने लगें, जो हमारे पास से गुजर रहा है, तो प्रभु का स्मरण, तो प्रभु का स्मरण ही होगा। और तब बैठकर हम कोई नाम नहीं जपने लगेंगे, और बैठकर हम कोई माला न फेरने लगेंगे। क्योंकि, यह सब बातें बहुत ही — बुद्धि हीनता की हैं। और इनको करने से कोई और बुद्धिहीन, ज्यादा से ज्यादा बुद्धिहीन हो सकता है और कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिये जो कौम इस तरह के काम पकड़ लेती है, उसकी बुद्धि और प्रतिभा धीरे-धीरे खो जाती है। और भोंप सी जाती है।

प्रभु का स्मरण तो चौंका देगा, जगा देगा, ज्यादा जीवंत हो जायेंगे और सब चीजों में रंग, रस बदल जायगा। सब कुछ और हो जायगा। जिंदगी बहुत रस पूर्ण, नृत्य से भर जायगी। एक संगीत का अर्थ आ जायगा। जिंदगी आपको पहली बार ऐसी लगेगी, ऐसी फूट पड़ेगी भीतर से, जैसे कोई बीज फूटता है और अंकुर बन जाता है। और कोई कली टूटती है और फूल बन जाती है। और कोई वीणा के तारों को छेड़ देता है और सन्नाटा भंग हो जाता है और चारों तरफ वीणा के स्वर गूंज जाते हैं। ठीक जब प्रभु का स्मरण आयेगा तो आपकी वीणा के तार गूंज उठेंगे।

आपकी कली टूट के फूल बन जायेगी। आपका बुझा दिया अचानक लपट लेके जल उठेगा। आप पायेंगे कि आप बिलकुल दूसरे आदमी हो गये हैं। तब बैठकर प्रभु नाम नहीं जपते रहेंगे, तब आप पायेंगे कि जपें किसको! वही मौजूद है। पुकारें किसको! वही मौजूद है। कौन किसको पुकारे क्योंकि मैं वही हूं।

और तब जिंदगी एक नया अर्थ लेके, एक नयी गति लेके चलना शुरू हो जायगी। वो जिंदगी एक धार्मिक आदमी की जिंदगी है, आनंद से भरी, अमृत से भरी, शांति से भरी, प्रेम से भरी, उसका कण-कण फिर आनंद है। **फिर दुःख नहीं है, क्योंकि फिर दुःख भी आनन्द है। फिर कांटे नहीं हैं, क्योंकि फिर कांटे भी फूल हैं। फिर मृत्यु नहीं है, क्योंकि फिर मृत्यु भी और बड़े जीवन में प्रवेश है।**

इस प्रभु की बात करना चाहूंगा, इन चार दिनों में। और बात हो क्यों! क्योंकि अकेली बात से क्या होगा! बातें तो हम बहुत कर चुके हैं, बहुत सुन चुके हैं। और कई बार तो ऐसा हो जाता है कि बातें सुनना भी एक रोग हो जाता है। हम सुनते चले जाते है, सुनते चले जाते हैं, फिर सुनना भी एक रस हो जाता है। लेकिन, सुनने से जीना कैसे निकलेगा? **आप खाने के सम्बन्ध में बातें नहीं सुनते हैं, खाना खाते हैं। और परमात्मा के सम्बन्ध में सिर्फ बातें सुनते हैं। आप सोने के लिए बिस्तर पर जाते हैं, सोने के सम्बन्ध में किताब नहीं पढ़ते।** हां, कुछ लोग पढ़ते हैं, जिनको नींद नहीं आती है। अन्यथा कुछ लोग हैं, अभागे लोग हैं, जिनको नींद जैसी सरल चीज भी असम्भव हो गयी है। वे जरूर किताबें पढ़ते हैं। वे किताबों में पढ़कर खोजते हैं कि कैसे सोया जाय। हमें हंसी आती है क्योंकि हम ऐसे ही सो जाते हैं। हम बिस्तर पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। हमें कुछ और नहीं करना पड़ता। लेकिन जो नहीं सो पाता, उससे पूछिये कि नींद इतनी आसान है? बल्कि उसे हैरानी होती है कि लोग कहीं धोखा तो नहीं दे रहे हैं। कहते हैं कि बिस्तर पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। मैंने तो बहुत बार सिर रखा है बिस्तर पर, नींद का तो कोई पता नहीं चलता। हजार उपाय करो और नींद नहीं आती। करवटें बदलो, भगवान का स्मरण करो, मालायें फेरो, हाथ पांव धोवो, यह करो, वह करो, गरम दूध पियो, गरम पानी से स्नान करो, कुछ नहीं होता, नींद नहीं आती। सब उपाय करता हूं

और नींद आती नहीं। और लोग कहते हैं कि हम बस तकिये पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। पता नहीं सारी दुनिया धोखा तो नहीं दे रही है कि आँख बंद करके लोग पड़े हैं! जिसको नींद नहीं आती उसे शक आता है। लेकिन उस बेचारे को पता नहीं कि नींद न तो किताबें पढ़कर लायी जा सकती है, क्योंकि सब किताबें पढ़ने से नींद में बाधा पड़ सकती हैं। और न नींद किसी उपाय से हम ला सकते हैं। क्योंकि कोई भी उपाय श्रम है और श्रम नींद में बाधा है। न माला फेरने से नींद लायी जा सकती है, क्योंकि माला फेरना भी जागने का काम है। और जो भी जागने का काम है, उससे नींद में बाधा पड़ेगी। और प्रभु नाम जपने से भी नींद नहीं आती है क्योंकि जपने से नींद टूट सकती है, नींद आयेगी कैसे! कोई उपाय नींद नहीं ला सकता है। लेकिन वह आदमी कहेगा, फिर मैं सोना चाहता हूं।

हम परमात्मा के संबंध में किताबें पढ़ते हैं, उपाय करते हैं। लेकिन परमात्मा में जीना चाहते हैं, तब फिर कुछ और भी करना पड़ेगा। अकेली बात काफी नहीं है। बात कुछ खबर ला सकती है। बात कुछ प्यास जगा सकती है। बात कहीं आप झपकी ले रहे हो तो चौंका सकती है। लेकिन चलना पड़ेगा, यात्रा करनी पड़ेगी, कुछ करना पड़ेगा। **और कितना आश्चर्यजनक है, उसे पाने के लिये कुछ करना पड़ेगा, जिसे हमने कभी खोया ही नहीं है! लेकिन मैंने कहा कि जीवन के गणित का यह सूत्र है कि जो निकट है, वह भूल जाता है। और परमात्मा हमारे निकटतम है, इसलिये बिलकुल भूल गया।** यह बिलकुल स्वाभाविक है, यह तर्कयुक्त है। अगर मैं आपसे कहूं कि जरा आँख बन्द करके अपनी माँ की तस्वीर याद करिये, तो आप सदा सोचते रहे होंगे कि मां की तस्वीर मुझे भली भांति याद है, लेकिन आँख बंद करके जब मां की तस्वीर को ख्याल करने बैठेंगे तो रेखायें बिखर जायेंगी, चेहरा बनाना मुश्किल हो जायगा। माँ को, जिसको पहले दिन से देखा है, जिसकी तस्वीर सबसे ज्यादा निकट थी, वह भी बिखर जायगी और खो जायगी। कोई अभिनेत्री की तस्वीर याद भी आ सकती है, साफ-साफ दिखाई पड़ सकती है, लेकिन मां की तस्वीर बिखर जायगी। असल में हम इतने निकट रहे हैं कि हमने मां को देखने की जरूरत भी नहीं समझी। हम उसके इतने हिस्से थे कि हमने उसे कभी गौर से देखा भी नहीं। कभी आपने अपनी मां को गौर से देखा है? नहीं, हम जो निकट है, उसे गौर से देखते ही

नहीं। **और परमात्मा तो हमारा निकटतम है। निकटतम शब्द भी ठीक नहीं है, हम वही हैं, उसके साथ एक ही हैं।** इसलिए निकटतम कहना भी ठीक नहीं है। वही हम हैं। तो उसे तो हम बिलकुल ही भूले हुये हैं। उसका तो हमें जरा भी पता नहीं है। इसका पता लगाने हम कहां जायें ? हिमालय पर! काशी, मक्का, मदीना, कहां जायें ? और अगर परमात्मा यहीं नहीं मिलता इस जूनागढ़ में तो हिमालय पर कैसे मिल जायगा ? मैं ही खोजने वाला, जूनागढ़ से हिमालय चला जाऊंगा, मैं ही ! जो यहां हूं, वहां होऊंगा। जगह बदल जायगी, झाड़ बदल जायेंगे, हवायें बदल जायेंगी, सूरज की रोशनी कम ज्यादा पड़ेगी, ठंडक होगी, गरमी होगी, झरने होंगे, कुछ फर्क होंगे, लेकिन मैं तो वही होउंगा, जो यहां हूं। और जब मुझे यहां नहीं खोजना आता तो वहां कैसे आ जायगा ! अगर मुझे इसका स्मरण यहां नहीं आता तो वहां कैसे आ जायगा ! रविन्द्रनाथ ने एक बहुत अद्भुत गीत लिखा है। और गीत में बड़ा व्यंग करवाया बुद्ध की पत्नी यशोधरा से। बुद्ध लौट आये हैं वापिस। बारह वर्षों की खोज करने के बाद घर आये हैं। तो रवीन्द्रनाथ ने अपने गीत में बुद्ध की पत्नी से कहलवाया है कि मुझे और कुछ भी नहीं पूछना, मुझे सिर्फ एक ही बात पूछनी है कि जो तुम्हें वहां जंगल में जाके मिला, वो यहां क्या मौजूद नहीं था ? इतना ही मुझे बतादो, बाकी मुझे कुछ भी नहीं पूछना है। वह जो तुम्हें बारह वर्ष जंगलों में खोज के मिला, वो इस घर में क्या मौजूद नहीं था ? और बुद्ध चुप रह गये। जवाब देना मुश्किल है। बुद्ध को भी जवाब देना मुश्किल है। क्योंकि बात तो यही सच है कि जिसे वे खोज के आये हैं, वो यहां भी था। और जिस खोजने के ढंग से उन्होंने वहां खोजा था, उसी खोजने के ढंग से वो यहां भी खोजा जा सकता था। सवाल खोजने वाले के ढंग, खोजने वाले आदमी का है, खोजने वाली जगह का नहीं। लेकिन हजारों साल से हम ऐसा सोच रहे हैं कि वह कहीं और जाके खोजना पड़ेगा। और यह क्यों सोच रहे हैं ? ये हम इसलिए सोच रहे हैं कि सदा से हम ऐसा मान के बैठे हैं कि 'वह' जिंदगी से कहीं दूर है। जीवन से कहीं और है। जीवन से भिन्न न केवल इतना ही बल्कि कुछ नासमझों ने तो हमको यह भी सिखा दिया है कि जीवन की बिलकुल शत्रुता में वह मिलेगा। जब तक हम जीवन के पक्के दुश्मन न हो जायँ, यानी दुश्मनी इस तरह की न करलें कि लोग अगर पैर के बल चलते हों तो हम सिरके बल शीर्षासन न लगायें तब तक वह नहीं मिलेगा। दुश्मनी पक्की करनी और लोगों से बिलकुल उल्टे हो जाना। लोग जो करते हैं और जिंदगी का जो रास्ता है, उससे उल्टे चले जाना है, तब वह

मिलेगा। बड़ी हैरानी की बात है, जिंदगी से अगर इतनी दुश्मनी है उसको, तो जिंदगी के होने का मतलब क्या है फिर! अगर जिंदगी से वह इतना नाराज है तो जिंदगी फिर है क्यों? क्यों इसे बढ़ाये चला जाता है? और अगर जिंदगी इतनी बुरी है, तो वो क्यों इसे जिंदगी दिये चला जाता है? क्यों यह श्वांसें आती हैं, और जाती हैं? और क्यों यह जन्म है? क्यों यह फूल खिलते हैं और क्यों यह बीज बन जाते हैं? अगर जिंदगी इतनी बुरी है, जैसे महात्मा कहते हैं तो परमात्मा बड़ा नासमझ है। या तो महात्मा ठीक है, या तो परमात्मा ठीक है, दोनों में से चुनाव करने का वक्त आ गया है। अगर महात्मा ठीक है तो परमात्मा बिलकुल गलत है, क्योंकि वह जिंदगी को रोज जन्म दिये जा रहा है। वह काम रोकता नहीं, वह कभी का काम रोक सकता था। वह कभी का 'लॉक आउट' कर देता, वह ताला लगा देता, हड़ताल कर देता, कुछ भी तो कर सकता था। वह कभी का बंद कर देता जिंदगी को कि बस. बहुत हो गयी जिंदगी बंद करदें। वह है कि नाचे चला जाता है। वह है कि उसकी अतृप्ति का अंत नहीं। वह तृप्त ही नहीं होता, वह कहता है, महापुरुष बना लिये ठीक है, और अद्भुत महापुरुष आगे बनायेंगे वह तृप्त ही नहीं होता। वह कहता है—रोज नया 'मॉडल', वह आदमी को रोज नया बनाये चला जा रहा है। उसकी अतृप्ति का कोई अंत नहीं है। इसलिए पुराना दुबारा नहीं बनाता। इसलिये वैसे महापुरुष को फिर से नहीं बनाता। वैसी भूल कभी नहीं करता वो।

जो 'ओरीजनल' नहीं है, जो मौलिक नहीं है, वह फिर वही, एक आदमी एक गीत लिख लेता है, फिर उसी गीत को लौट-लौट के दोहराये चला जाता है। फिर नयी-नयी कड़ियों में उसी को बांधता रहता है। एक आदमी एक चित्र बना लेता है, फिर घूम फिरकर वही चित्र बनाये चला जाता है। एक आदमी एक कहानी लिख लेता है, फिर बस वही कहानी, वही प्लाट फिर बार-बार लिखे चला जाता है। नाम बदल देता है, थोड़ी घटना बदल देता है, लेकिन कहानी वही। लेकिन कहानी ईश्वर बहुत अद्भुत है। कितने अरब-अरब, खरब-खरब लोग जमीन पर पैदा होते हैं, लेकिन एक-एक आदमी अनूठा और अद्वितीय और अलग है। दुबारा दोहराता नहीं एक भी आदमी को, 'रिपीटीशन' है ही नहीं वहां। अभी भी तीन साढ़े तीन अरब आदमी जमीन पर है, अगर खोजने जायं तो एक जैसे दो आदमी न मिलेंगे। आदमी बहुत दूर की बात है, दो एक जैसे पत्ते भी नहीं मिलेंगे खोजने से।

एक आम का पत्ता तोड़लें और खोजने चले जायं तो दूसरा पत्ता न मिलेगा ठीक वैसा। उसकी सृजनात्मकता बड़ी मौलिक है। वह रोज नये को पैदा किये चला जाता है। लेकिन आदमी, आदमी कहता है, महापुरुषों जैसे हो जाओ, बड़ा अमौलिक है। आदमी बड़ा रुढ़िग्रस्त है। वह कहता है ठीक है, चलो महापुरुष हो गये तो अब महापुरुषों जैसे ही बन जाओ, अब नये की क्या जरूरत है। **लेकिन परमात्मा निरंतर नये की खोज में लगा है और महात्मा सदा पुराने की खोज में लगे हुए हैं। वह कहता है—हमारी किताब जितनी ज्यादा पुरानी उतनी अच्छी और परमात्मा रोज नये को पैदा करता है।** वो बूढ़े को विदा कर देता है और बच्चे को खड़ा कर देता है। वहै कहता है, अब आप हट जाइये, अब आप काफी पुराने हो गये हैं। अब आप जरा मंच के पीछे आ जाइये। बड़ा नासमझ है, एक अर्थ में नासमझ है। नासमझ इस अर्थों में है कि बूढ़ा तो इतना अनुभवी था, उसको हटाके वह गैर अनुभवी जरा से बच्चे को उसकी जगह दे रहा है। बूढे ने तो जिंदगी भर इतना अनुभव से, ज्ञान से सीखा था, इकट्ठा किया था। इतना समझ पाया था उसको विदा कर रहे हो और एक बिलकुल अनजान, अपरिचित बच्चे को ला रहे हो, जिसका कोई भरोसा नहीं कि अच्छा होगा कि बुरा होगा, क्या करेगा, क्या नहीं करेगा, चोर होगा, बेईमान होगा, साधु होगा, असाधु होगा, कुछ पता नहीं। एक अबोध बच्चे को रख रहे हो, उसको हटाकर ! लेकिन परमात्मा नये को प्रेम किये चला जाता है। वह कहता है **जो भी पुराना हो जाता है, वो वापिस हट आये। नये में जीवन है, पुराने में मृत्यु है।** जो पुराना है अर्थात् जो मर गया, मर रहा है, मरने के करीब पहुंच गया है। नया अर्थात् जो अभी जियेगा, जन्म लेगा, बढ़ेगा, फैलेगा, फलेगा, फूलेगा, आगे... और आगे... और आगे ! महात्मा कहते हैं कि जीवन के विरोध में है धर्म। वे कहते हैं कि जीवन को छोड़ दो तो ही धार्मिक हो सकते हो। और मेरा मानना है कि इसी शिक्षा के कारण पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पायी, क्योंकि जीवन को छोड़ना असंभव है। जो भाग जाते हैं छोड़ के, वे भी छोड़ते नहीं सिर्फ नई शकलों में, नये दरवाजों से जीवन में वापिस लौट आते हैं। घर छोड़कर भागते हैं और फौरन एक आश्रम बनाते हैं। अब आश्रम और घर में सिवाय बोर्ड के और कोई फर्क नहीं होता। (हास्य) इधर बेटे, बेटियां, पति, पत्नी, उनको छोड़ के भागते हैं और यहां चेला, चेलियां, शिष्य, शिष्यायें, यह सब नामों का रूपांतरण है। इसमें कोई फर्क नहीं है। बाप अपने बेटे के लिये जितना चिंतित होता है, गुरु अपने शिष्यों के लिए उससे ज्यादा चिंतित

रहता है। बाप को अपने बेटों के बिगड़ जाने का जितना भय सताता है, गुरुओं को अपने शिष्यों के बिगड़ जाने का उससे भी ज्यादा भय सताता है।

एक तरफ से जीवन का दरवाजा बन्द करते हैं, जीवन का झरना दूसरी तरफ से टूट के बहना शुरू हो जाता है। वह नयी-नयी शक्लों में खोज लेता है, लेकिन बहेगा। जिंदगी से कोई भाग नहीं सकता, क्योंकि जिंदगी से भागना असम्भव है। हम जहां भी जायेंगे, जिंदगी वहां है। हम सिर्फ जिंदगी की शकलें बदल सकते हैं, रूप बदल सकते हैं, द्वार बदल सकते हैं, लेकिन जिंदगी से भाग नहीं सकते। हम यह कर सकते हैं कि हम यह कपड़े न पहनें, इनको हम गेरुए रंग से रंगलें, लेकिन यह गेरुआ उतना ही जिंदगी का हिस्सा है, जितना कोई और रंग और गेरुआ वस्त्र जिंदगी के लिए उतना ही आनन्दपूर्ण हो सकता है, जितना कोई और वस्त्र। इससे क्या फर्क पड़ता है कि किसने कौन से वस्त्र पहन रखे हैं? इससे क्या फर्क पड़ता है कि कौन किस मकान में ठहरे हैं? इससे क्या फर्क पड़ता है? इससे सिर्फ एक ही फर्क पड़ता है कि पाखंड (Hypocracy) पैदा होती है और कोई फर्क नहीं पड़ता है, इसलिए हम जिंदगी को अगर सीधे-सीधे स्वीकार कर लें तो हमें पाखंड और बेइमानियां न खोजना पड़ें।

अभी एक सन्यासी मुझे मिलने आये थे। साथ में एक आदमी को लाये थे। मैंने उनसे कहा कि कल सुबह आप आ जायें, अभी तो मुझे वक्त नहीं है, कुछ और लोगों को समय दिया है। आप कल सुबह आ जायं। उन्होंने कहा कि बड़ा मुश्किल होगा, क्योंकि मैं पैसे पास में नहीं रखता। यह भाई पैसा रखते हैं। यही साथ चलते हैं और इनकी सुविधा से मुझे आना जाना पड़ता है, क्योंकि टेक्सी का पैसा चुकाना पड़ता है और मैं पैसा रखता नहीं। तो अगर इनको समय सुबह हो तो फिर मैं आ सकता हूं। तो मैं ने उनसे कहा, 'पैसे का एक बंधन था, वह समझ में आता था, अब एक और डबल बंधन, (तालियां) यह आदमी और एक उपद्रव, इसको अगर समय नहीं है तो आप नहीं आ सकते, क्योंकि यह पैसा रखता है, यह पैसा देगा, लेगा।' अब यह पाखंड है सब, अगर टैक्सी में बैठना है और यदि पैसे देने हैं, तो अपने खीसे में रखें कि दूसरे के खीसे में रखें, इससे क्या फर्क पड़ता है! हां एक फर्क पड़ता है कि रखने वाला यह सोच रहा

है कि जो खीसे में रखता है, वह नर्क जायेगा और हम स्वर्ग जायेंगे। बड़ा मजा है, पैसे तुम्हारे खीसे में रखे हुए हैं और नरक वह जायेगा और आप धार्मिक सन्यासी हो और आप उसको नर्क भिजवा रहे हो ! वह बेचारा सेवा कर रहा है, आपके टेक्सी के पैसे चुका रहा है।

(जोर से तालियां और मुक्त हास्य)

जिंदगी से भागने का परिणाम हुआ है पाखंड, सीधा नंगा पाखंड खड़ा हो गया सब तरफ, क्योंकि हम जिंदगी से भागेंगे कैसे ? जिंदगी चारों तरफ है। जहां भी हम जायेंगे वहीं है। **जिंदगी को जीना पड़ेगा। तो अगर कमायेंगे नहीं तो भीख माँगनी पड़ेगी, भीख माँगने का मतलब कि हमारे लिये कोई और कमायेगा और क्या मतलब होता है भीख मांगने का ? लेकिन मजा यह है कि हम कमाने को पाप समझते हैं, कोई दूसरा कमाता है, उसको हम कोई पाप नहीं समझते।** तो यह तो सिर्फ 'लीगल' कानूनी तरकीबें हुईं, इससे कुछ हल होने वाला नहीं है। यह सब कानूनी तरकीबें हुईं।

गांधीजी पढ़ने लन्दन गये तो उनके समाज के लोगों ने कहा कि उनको हम जाने न देंगे, क्योंकि वह जात के बाहर कर दिये जायेंगे और उनके समाज के लोगों ने फैसला किया कि जो उनकी सहायता करेगा, पैसे देगा, उसको भी हम जाति के बाहर कर देंगे। उनके चचेरे भाई सब पैसा ले के बम्बई गांधी को पहुंचाने गये। उनके चचेरे भाई ने कहा—'अगर मैं तुमको पैसा दूंगा तो मैं तक जाति के बाहर हो जाऊंगा, तो मैं तो पैसा नहीं दे सकता।' अब बड़ी मुश्किल हो गयी, वक्त आ गया जाने का और वह भाई ही पैसा देने से इन्कार करता है। तब एक कानूनी तरकीब, 'लीगल' तरकीब निकाली गयी। गांधी जी ने किसी और आदमी से, जो जाति के बाहर है, जो उनकी जाति का नहीं, उससे रुपये ले लिये, उनके भाई ने उसे रुपये चुका दिये। उनके भाई ने गांधी जी को पैसे नहीं दिये, इसलिए समाज उन पर मुकदमा नहीं चला सकता और उस समाज के किसी आदमी ने गांधी जी की सहायता नहीं की, किसी बाहर के आदमी ने सहायता की। उसका आप कुछ बिगाड़ ही नहीं सकते, वह समाज के बाहर ही है। इसको मैं कहता हूं कानूनी तरकीब है। जो आदमी जिंदगी से भागेंगे, वे इस तरह की कानूनी तरकीबें खोज लेंगे। **सभी सन्यासी कानूनी तरकीबों से जी रहे हैं। सारा सन्यास कानूनी तरकीब से जी रहा है। क्योंकि जिंदगी छोड़कर जीना ही**

असम्भव है। तो फिर तरकीबें निकालनी पड़ेंगी कि हम कैसे जियें ! उसका ढंग खोजना पड़ेगा। जिंदगी से कोई भाग नहीं सकता है और जिंदगी से भागना उचित भी नहीं हैं, क्योंकि भाग के जाइयेगा कहां ? आप भी तो जिंदगी हैं, मैं भी तो जिंदगी हूं; सबसे भाग भी जाऊंगा, पर अपने से कैसे भागूंगा !

मैंने सुना है एक, फकीर के पास कुछ युवक साधना के लिये आये थे कि हमें परमात्मा को खोजना है। तो उस फकीर ने कहा, "तुम एक छोटा सा काम कर लाओ।" उसने उन चारों युवकों को एक-एक कबूतर दे दिया और कहा कि कहीं अंधेरे में इनको मार कर ले आओ, जहां कोई देखता न हो। एक गया बाहर, उसने देखा चारों तरफ, सड़क पर कोई नहीं था, दोपहर थी, लोग घरों में सोये थे। उसने जल्दी से गरदन मरोड़ी भीतर आ के उसने कहा कि यह रहा, सड़क पर कोई भी नहीं था। दूसरा युवक बड़ा परेशान हुआ। दिन था, दोपहर ही थी, उसने सोचा "मैं मारूं तब तक कोई आ जाय, कोई खिड़की खोल के झांकलें, कोई दरवाजा खोलकर सड़क पर निकल आये, तो गलती हो जायगी। उसने मन में कहा कि रात तक रुक जाना जरूरी है। रात जब अंधेरा उतर आया, तब वह गया और उसने गरदन मरोड़ी और वापिस लाके सांझ को गुरु को दे दिया और उसने कहा, "यह रहा, कोई भी नहीं था, अंधेरा पूरा था, अगर होता भी तो भी दिखाई नहीं पड़ सकता था।" तीसरे युवक ने सोचा कि रात तो है, अंधेरी है, सब ठीक है, लेकिन आकाश में तारों का प्रकाश है और कोई निकल आये, कोई दरवाजे से झांकले, किसी को थोड़ा भी दिखाई पड़ जाय तो खतरा है। तो वह एक तलघरे में गया द्वार बन्द कर लिये, ताला लगा लिया, गरदन मरोड़ी और लाकर गुरु को दे दिया। उसने गुरु से कहा कि तलघरे में मारा, ताला बन्द था, किसी के भीतर आने का उपाय न था, नजर की तो बात ही नहीं थी, आने की। चौथा युवक बहुत परेशान हुआ। पन्द्रह दिन बीत गये, और महीना बीतने लगा। गुरु ने कहा "वह चौथा कहां है ? क्या अभी तक जगह नहीं खोज पाया ? आदमी उसे खोजने भेजे गये। वह लड़का करीब-करीब पागल हो गया था। कबूतर को लिये गांव-गांव फिर रहा था। बिलकुल पागल हो गया था। फिर लोगों से पूछता था कि ऐसी कोई जगह बता दो जहां कोई न हो। लोगों ने उसे पकड़ा, उसे गुरु के पास लाये। गुरु ने कहा कि पागल हो गये हो ! तुम्हारे तीन साथी तो उसी दिन कबूतर मार कर ले आये। रात होते-होते सब वापिस लौट आये, तुम क्या कर रहे हो ? उसने कहा कि

मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। मैं भी अंधेरे तलघरे में गया था, लेकिन जब मैं कबूतर की गरदन मरोड़ने लगा तो मैं ने देखा कि कबूतर मुझे देख रहा है, तो मैंने कबूतर की आँखों पर पट्टी बांध दी और मैं फिर एक अंधेरी गुफा में गया कि पट्टी में भी किसी तरह दिखाई न पड़ जाय। लेकिन जब मैं गरदन मरोड़ने को था, तो मैंने सोचा कि मैं तो देख ही रहा हूं। तब मैंने अपनी आंखों पर भी पट्टी बांधली और पट्टियों पर पट्टी बांधली ताकि आंख कहीं से झांक कर देख न ले, क्योंकि आदमी की आंख का कोई भरोसा नहीं कितनी पट्टियां बांधो, थोड़ी तो झांक के देख ही सकती है और जहां मनाई हो वहां तो झांक ही लेते हैं। उसने कहा, मैंने काफी पट्टियां सब तरफ से बाँधली, बस, गरदन दबाने को ही था कि मुझे ख्याल आया कि अगर परमात्मा कहीं है, तो उसे दिखाई पड़ेगा ही और उसी की खोज में मैं निकला हूं। तबसे मैं पागल हुआ जा रहा हूं। मुझे वह जगह नहीं मिल रही है, जहां परमात्मा न हो। यह कबूतर सम्भालिये आप, यह काम नहीं होने का।" उसके गुरु ने कहा कि बाकी तीन फौरन विदा हो जाओ, तुम्हारी यहां कोई जरूरत नहीं है। इस चौथे आदमी की यात्रा हो सकती है। इसे जीवन के चारों तरफ छिपे हुए का थोड़ा-सा बोध हुआ है। इसने गहरे से गहरे खोज करने की कोशिश की है। इसे कुछ बोध हुआ है कि कोई मौजूद है चारों तरफ। यह चारों तरफ जो मौजूदगी है, जो प्रजेन्स है, उसका अनुभव-स्मरण है। इसका स्मरण कैसे जगे, जिसे हम भूल गये हैं और खोया नहीं है, उसे हम फिर कैसे स्मरण कर लें।

तो इन चार दिनों में आपसे मैं बात ही नहीं करना चाहता, सच तो यह है कि बात मैं सिर्फ मजबूरी में करता हूं। बात करने में मुझे बहुत रस नहीं मिलता। बात सिर्फ इसलिए करता हूं कि कुछ और करने को भी आपको राजी कर सकूं। हो सकता है, बात से आप राजी हो जायं, कुछ और किया जा सके, जिस का बात से कोई सम्बन्ध नहीं। तो सांझ को बात करूंगा और जिनको लगे कि कहीं और यात्रा करनी है, **उनके लिये सुबह ध्यान का प्रयोग करेंगे। और उस द्वार में प्रवेश की कोशिश करेंगे, जहाँ से उस प्रभु का पता चलता है जो कि जीवन है।** उसका पता चल सकता है, कठिन नहीं हैं, क्योंकि वह बहुत निकट है। कठिन नहीं है, क्योंकि वह दूर नहीं है, **और कठिन नहीं है, क्योंकि हमने उसे सच में खोया ही नहीं है।** हम चाहें उसे कितने ही भूल गये हों, वो हमें किसी भी हालत में और कभी भी

नहीं भूल पाता। बच्चे बड़े हो जाते हैं और माँ को भूल जाते हैं। स्वाभाविक है भूल जायं। बच्चे मां को याद रखें, जिंदगी में निकलें और कुछ खोजें! बच्चे मां को भूल जाते हैं, स्वाभाविक है, क्योंकि बच्चे भागेंगे जिंदगी की तरफ और मां को भूल जायेंगे, लेकिन मां नहीं भूल पाती।

मैं एक छोटे से स्टेशन पर रुका हुआ था। गाड़ी चूक गया था। स्टेशन के प्लेट फार्म पर बैठा हुआ था। पास के गांव से एक बूढ़ी औरत को कुछ लोग लाये स्टेशन पर, उसके सिर पर पट्टियां बंधी थीं। सिर में किसी ने चोट की थी, संभवतः किसी ने कुल्हाड़ी से चोट मारी थी। कुछ औरतें रो रही थीं। अभी बूढ़ी औरत जिंदा थी। उसके साथी, उसके रिश्तेदार सब उदास थे। मैंने उनसे पूछा कि क्या हुआ? वह औरत स्ट्रेचर पर पड़ी थी, आधी बेहोश थी, उसे किसी बड़े नगर ले जाया जा रहा था। वे गाड़ी में बिठाल के, किसी बड़े अस्पताल ले जा रहे थे। पास की दूसरी औरतों ने कहा कि मत पूछिये, एक ही बेटा है इसका और ऐसे बेटे तो पैदा होते ही मर जायँ तो अच्छा, क्योंकि उस बेटे ने ही इसको यह कुल्हाड़ी मारी है। लेकिन, वह बूढ़ी औरत एकदम से चौंक गयी, जो शायद जिन्दा नहीं रहेगी—घड़ी दो घड़ी बाद मर जायगी। उसका बहुत खून बह गया है और गाड़ी आने में देर है और पता नहीं बड़े अस्पताल तक पहुंच भी पायेगी की नहीं। वह मरती हुई बूढ़ी औरत एकदम चौंक गयी, उसने आँख खोली और कहा कि ऐसा मत कहो। आज मेरा बेटा है, तो उसने मारा, अगर न होता तो मारने के लिये भी तरस जाते कि कोई मारे। मेरा बेटा है तो उसने मारा, लेकिन यह मत कहो कि ऐसा बेटा पैदा होते ही मर जाता। यह कहते-कहते माँ मर जाती है। उसके बेटे ने उसे कुल्हाड़ी मारी, मारने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, लेकिन वह नहीं भूल पाती है।

ईश्वर—मैं कह रहा हूं—उस चेतना के सागर को, जहां से हम आते हैं और जहां हम चले जाते हैं। जब माँ नहीं भूल पाती जिससे हमारा केवल शरीर आता है, सिर्फ शरीर आता है—ध्यान रहे ज्यादा बहुत कुछ नहीं आता मां से। और शरीर भी बड़ी छोटी व्यवस्था में आता है। जब वह मां नहीं भूल पाती, जिससे हमारा शरीर आया, लेकिन जिससे हमारा सब कुछ आया है— सारा व्यक्तित्व आया है, उसके भूलने का सवाल ही नहीं है। लेकिन ध्यान रहे, इसका मतलब यह नहीं है कि वह बैठकर आपको याद कर रहा है,

क्योंकि याद हम तब ही करते हैं, जब हम भूल जाते हैं। जिसे हम भूलते नहीं, उसकी याद का सवाल ही नहीं उठता। आप याद में हैं ही। और जिस दिन कोई व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुंचता है, उस दिन हैरान हो जाता है कि कितनी उसने याद की! कितनी प्रतीक्षा की, वह द्वार पर ही बैठा था! कितनी बार उसने द्वार खटखटाये, कितनी बार पुकारा कि खोलो, खोलो, लेकिन हम व्यस्त थे अपने कामों में। यह भी हो सकता है कि हम पूजा में व्यस्त रहे हों या अपनी घंटी हिला रहे हों या अपने भगवान के सामने आरती घुमा रहे हों और हमने सोचा हो, "यह कौन बाधा दे रहा है दरवाजे पर। हवायें दरवाजे को धक्का दे रही हैं और हम अपने बनाये हुए भगवान के सामने पूजा कर रहे हैं। हवायें उसका हाथ है, वह जो द्वार पर दस्तक दे रहा है जीवन के, थकता नहीं, दिये जाता है दस्तक, उसे हम कैसे याद कर सकते हैं!"

सुबह ध्यान में ही हम उसकी स्मृति में प्रवेश करने का प्रयोग करने वाले हैं, इसलिये सुबह जो लोग आयें, वे वेही लोग आयें, जो सुनने में नहीं, जानने में, होने में, पहुंचने में, खोजने में, कुछ करने में उत्सुक हैं। एक घंटा सुबह हम गहरे से गहरे ध्यान का प्रयोग करने वाले हैं। रोज सांझ उस सम्बन्ध में कुछ कहूंगा। उस कहने का केवल एक ही मतलब है कि सुबह आप आ सकें। जो भी आपके प्रश्न होंगे वह लिखकर दे देंगे, उनकी रोज शाम की चर्चाओं में मैं बात कर लूंगा। लेकिन ध्यान रहे, जो भी मैं कह रहा हूं, उस सम्बन्ध में ही प्रश्न पूछेंगे तो अच्छा है। और सुबह, जो लोग ध्यान करेंगे, ध्यान के सम्बन्ध में भी जो पूछना हो वह भी लिखकर दे देंगे तो उनकी भी बात हम रात को कर लेंगे। इधर मेरा इरादा बात करने का नहीं है। कभी भी नहीं था। बात सिर्फ मजबूरी है। कोई उपाय नहीं है कि आपको वहां ले जाया जाय, जहां बहुत फूल खिले हैं। कोई उपाय नहीं है कि आपको वहां ले जाया जाय, जहां उसका मंदिर है। शायद आप सुनलें पुकार और उस तरफ चल पायें। कल सुबह साढ़े आठ बजे जो लोग उसके मंदिर में प्रवेश करना चाहते हैं, वे आ जायें। आने के लिये दो–तीन बातें ख्याल में रखें। बिना स्नान किये कोई भी न आये। कपड़े धुले पहन कर आयें और घर से ही चुप मौन होकर चलें। रास्ते में बात-चीत करते मत आइये। और यहां तो आकर बिलकुल ही चुप बैठें। यहां कोई बात-चीत नहीं करेगा, जो भी आये चुपचाप बैठता चला जाय। चुपचाप पहले से ही आंख बंद करके बैठ

जाँय, कुछ भी न करें—मैं जब आऊंगा ठीक साढ़े आठ बजे और आप ठीक साढ़े आठ बजे के पहले आ जायं। बाद में कोई न आये, क्योंकि जब प्रयोग शुरू हो जायगा तो फिर आपकी समझ में आना मुश्किल हो जायगा कि क्या हो रहा है ठीक साढ़े आठ के पहले आ जायं। स्नान करके और घर से चुप चलें। आंख भी नीची रखे हुए आएँ। आँख से भी बहुत देखें मत चारों तरफ। आँख नीची रखकर, बात बन्द करके, चुपचाप मौन से यहां आकर बैठ जायँ। ठीक समय पर प्रयोग शुरू हो जायगा। वह साढ़े नौ तक चलेगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इसके लिये अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

———

रजनीश : एक आत्म-चिंतन

—शिव

चारों ओर आग लगी है
भीतर लोग सो रहे हैं।
मैं आवाज लगाता हूं
तो वे मुझी पर बरस पड़ते हैं—
कि नींद में बाधा पहुंचाते हो ?
आह !
मैं कैसे अंधों से घिरा हूं
कि न वे जागने का नाम लेते हैं
और न मुझसे
उन्हें मरने को छोड़ा जाता है !
—कौन समझेगा
मैं कैसे प्रेम से भरा हूं !

———

मेरी संन्यास–यात्रा

–स्वामी कृष्ण कबीर

(बम्बई)

"तुम संन्यास क्यों नहीं लेते ?" प्रश्नार्थ और तीखी दृष्टि से देखते हुए आचार्यश्री ने बैठे-बैठे ही अपने शरीर को पीछे की तरफ खींचते हुए पूछा।

७ दिसम्बर की दोपहर, बैंक आफ इन्डिया-अहमदाबाद, शाखा से भागते हुए एक युवक करीब चालीस मिनट तक 'To be or not to be' की स्थिति में से बाहर निकलकर आचार्यजी से मिलने आया था, बोला, "बिलकुल तैयार हूं।"

"सब ठीक हो जायगा" सिर पर हाथ रखकर आचार्य श्री ने कहा, "कपड़े का इन्तजाम करो।"

युवक अपने दर्जी के पास गया। पिछले दिन पेंट सिलवाने के लिए कपड़ा दिया था। उसने दर्जी से कहाकि अब मेरा छोटा भाई नाप देने आयेगा, मेरी पेन्ट मत बनाना। बैंक में मित्रों को बताया कि मुझे इन कपड़ों में आखरी बार देख रहे हैं, कल से मैं सन्यासी के कपड़े पहनकर बैंक में आऊंगा। फिर रेडीमेड कपड़े लेकर आचार्यश्री के निवास स्थान पर पहुंच गया। वे भोजन कर रहे थे। कपडे बदल कर मैं उनके पास पहुंचा तो बोले "तुम्हारे लिए अच्छा नाम ढूंढ़ा है। आज से तुम्हारा नाम कृष्ण कबीर रखते हैं।" फिर और संन्यासी जो कि पास बैठे थे उनकी ओर देखकर बोले, "देखा, संन्यास का सौंदर्य ही अलग है। इतने में मां आनन्द मधु माला लाकर मुझे पहनाने को ही थी कि आचार्यश्री ने कहा, "लाओ माला मैं ही पहनाता हूं।" उनके मुख पर जो प्रसन्नता थी उस समय उसे शब्दों में कहना असम्भव है। कहने की जरूरत नहीं कि वह युवक मैं ही था।

स्वामी आनन्द मूर्ति मुझे कपड़े पहनाना सिखाते थे। इतने में आचार्य

श्री तैयार होकर बाहर आये और बोले "क्यों भाई कबीर, प्रवचन में आना है न ?" फिर हम एक ही कार में प्रवचन-स्थल पर पहुंचे।

मेरी मां भी प्रवचन सुनने हर रोज आती थीं, लेकिन उस दिन देर से आईं—जब आईं तब स्टेज से उतरकर मैंने प्रणाम किया तो वह चौंक उठीं। प्रवचन सुनने में उनका मन न था।

प्रवचन का आखरी दिन होने की वजह से संन्यासी मित्र एवं शुभेच्छुक आचार्यजी को रेल्वे स्टेशन पर छोड़ने जा रहे थे। आचार्यश्री को स्टेशन पर विदा देकर घर पहुंचा तो पिताजी बोले, "ये सब क्या मचा रखा है ?"

"मुझे ठीक लगा तो मैंने सन्यास लिया है। समय कम होने की वजह से मैं अनुमति लेने नहीं आ पाया था," मैंने नम्रता से कहा। सुबह सावधिक संन्यास लेने की मेरी इच्छा मैंने प्रगट की थी तब पिता जी व्यस्त होने की वजह से बोले, "हमेशा के लिए भी ले सकते हो पर अभी व्यस्त हूं, बाद में बात करेंगे।" सन्यास लेते समय मैंने सोचा पिताजी बहुत जल्द ही राजी हो जायेंगे और उनके कथन को लगभग अनुमति मान लिया। फिर भी पिताजी के मुख पर विषाद, क्रोध स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। मैं शांत था। साथ मेरे एक मित्र भी आए थे, उन्होंने चर्चा शुरू की और पिताजी ने सारा गुस्सा उनके ऊपर डाल दिया। वे मित्र मेरे साथ बैंक में काम करते थे और सब सह गये।

फिर पिताजी को मैंने बताया कि ये सन्यास से कुछ भी अलाभ न होगा, क्योंकि घर में रहकर, सर्विस चालू रखकर साधना करनी होगी। अगर मेरे घर में रहने से नुकसान होता हो तो मैं जाने के लिए तैयार हूं। कृपया कल सुबह तक आप निर्णय मुझे दे दें, तो उसके मुताबिक करने को मैं राजी हूं।

पिताजी ने फिर शांत होकर बताया कि संन्यास एक तो मुझे पूछे बिना लिया, दूसरे तुम्हें रहना तो है घर में और सन्यास के बारे में जानने के लिए मुझे पुस्तिका पढ़ने को कह रहे हो। इनकी ये बातें बिलकुल ठीक थीं, पर कुछ था भीतर, जो कह रहा था कि **जीना है अगर तो यही मार्ग है बाकी तो जीवन व्यर्थ और अर्थहीन ही व्यतीत होगा।** पिताजी मेरी नौकरी के बारे

में भी चिंतित थे मैंने बताया कि मुझे कल देखने तो दो। कभी-कभी ऐसा होता है कि हम काल्पनिक भय खड़ा करते हैं और वास्तव में ऐसा ही हुआ।

रात को मां मेरे पास आई मुझे कहा, "पिताजी बुला रहे हैं।" फिर माताजी, पिताजी और मैं—तीनों उस निर्णय पर आये कि बैंक में कुछ तकलीफ हो तो छुट्टी लेकर घर पर मुझे आना होगा। मैंने कहा, ठीक है। पिताजी ने कहा कि तुम घर पर रह सकते हो और तुम्हारी ओर से लोगों को मैं समझाने की कोशिश भी करूंगा। माताजी एवं पिताजी के रूप में उस वक्त परमात्मा की कृपा स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी।

दूसरे दिन बैंक में तो कोहराम मच गया। इतना शौकीन लड़का—अच्छे से अच्छे कपड़े पहनना, होटल–पिक्चर जाना, पार्टी-प्रोग्राम में जाना, ये मेरे उस जीवन के आवश्यक अंग थे—सन्यासी हो गया! क्या कुछ 'फ्रस्ट्रेशन' था? संसार से मन उठ गया? क्या हुआ?

बैंक में जाकर शीघ्र ही स्टाफ डिपार्टमेंट के आफिस से अनुमति ली कि एक घंटा मुझे दें, ताकि सबसे मिलकर मैं बैंक का काम शांति से कर पाऊं। उन्होंने अनुमति दे दी। फिर तो मैनेजर से लेकर झाड़ूवाले तक सबको स्वयं मिला और कहा कि आज से आप मुझे इन्हीं कपड़ों में देखेंगे, कुछ पूछना हो तो अभी पूछिये, ताकि सच्ची बात आपको पता चले। कुछ लोगों ने मजाक की, तो किसी ने नैतिक हिम्मत की सराहना की। मित्र सब दुःखी थे। लेकिन बात करने पर समाधान हुआ। मैनेजर, एकाउन्टेन्ट और बड़े आफिसर–सबने काफी प्रश्न पूछे और इस मार्ग पर मुझे सफलता मिले ऐसी शुभकामना प्रगट की। कुछ मित्र बोले कि अभी क्या जल्दी है, जिंदगी बड़ी लम्बी है। सबसे मिलकर अपने काम पर लग गया। दोपहर को पिताजी आये और मैंने ग्रीन सिग्नल का इशारा किया तो उनको शांति हुई।

शाम होने तक करीब पांच-छह–सौ लोग मिले और इनसे बात करते हुए पता चला कि **विद्रोह से तो भीतर की शक्ति जगती है और संकल्प बढ़ता है।**

उसी हफ्ते मेरे दो चचेरे भाइयों की शादी थी। एक मित्र जो बैंक में थे उनकी भी शादी थी। बैंक के जनरल मैनेजर अहमदाबाद आये थे, तो एक स्वागत समारोह आयोजित किया था, जिसमें करीब बैंक के सात सौ कर्मचारी एवं आफीसर आये थे। रास्ते में मिल जाते और पूछते वे अलग। एक ही हफ्ते में करीब डेढ़ हजार व्यक्तियों से मुलाकात हुई। डेढ़ हजार

व्यक्ति जो कभी आचार्य श्री को न तो सुनने को आते, न संन्यास के बारे में उत्सुकता दिखाते—उनसे सविस्तार बातचीत हो पाई। तब जाकर आचार्य श्री का संन्यास के बारे में बहिर्मुख-दृष्टिकोण ख्याल में आया। गेरुए वस्त्र देखकर कोई भी व्यक्ति उसके बारे में सोचे बिना नहीं रह सकता—चाहे पक्ष में या विपक्ष में।

फिर तो सगे संबंधी भी मिलने आये, पत्र भी आये कि ये सब छोड़ दो, लेकिन अब मैं आश्वस्त था, क्योंकि पिताजी तथा माताजी से बात करते लोगों ने देखा कि इनको कोई एतराज नहीं, तो फिर कोई उपाय नहीं। वास्तव में जब कोई नई बात आती है—जो कि परिवर्तन लाती है समाज में—उसके प्रति हरएक व्यक्ति विरोध प्रदर्शित करता है, दबाने-कुचलने को तैयार रहता है, मगर भीतर से जो निर्णय आता है उसे दुनिया की कोई ताकत नहीं बदल सकती है। एक मेरे मित्र ने—जो हाल में अमेरिका में हैं, जिन्होंने मुझे "क्रांतिबीज" देकर आचार्य जी का परिचय करवाया था—लिखा कि अच्छा होता अगर पांच-छह साल पहले मैंने किताब न दी होती। और मजा ये है कि मैं जितता ऋणी हूं उनका उतना बहुत कम लोगों का रहूंगा। कॉलेज में जब साथ पढ़ते थे तब मुझे उन्होंने ये किताब दी और कहा कि कम से कम एक हफ्ते के लिए अपने घर में रखो, चाहे न पढ़ो और हो सके तो पढ़ लेना। क्योंकि ये मित्र भलीभांति जानते थे कि जो लड़का अखबार तक बड़ी मुश्किल से पढ़ता है और कभी किसी नावल को जिसने छुआ तक नहीं उसे किताब पढ़ने के लिए कैसे कहा जा सकता है! लेकिन ये हाने को ही था।

बचपन से ही रात को देर तक घूमने की मेरी इच्छा रही है। पता नहीं था, क्यों अकेले होने का मन होता था, क्यों एक उदासी घेरे हुए थी? जैसे कुछ ढूढ़ता था, मगर पता नहीं था क्या ढूंढ़ता था। सब कुछ करते हुए भी मन नहीं भरता था और फिर वही उदासी...। इसी वजह से कई रातें कांकरिया तालाब (अहमदाबाद) के चक्कर काटते, गाते हुए, शांत होकर, अकेले या एक-दो निकटतम मित्रों के साथ काटी हैं। मित्रों के साथ बिना बातचीत किये हुए कई घंटे बीत जाते। आज संन्यास के बाद ये उदासी; जैसे सुबह आने को है और अंधेरा दूर होता है, ऐसे भागती जा रही है, करीब-करीब जा चुकी है। पहले से ही प्रिन्स की तरह जिया हूं फिर भी उस उदासी को साथ में लिए हुए।

ऐसे ही रात को घूमने से वापिस आने पर अचानक मेरी नजर "क्रांतिबीज" पर पड़ी; उठाके दो-चार पंक्ति पढ़कर सोचने लगा। फिर से पढ़ने का मन हुआ और एक प्रकरण (एक पन्ना) पूरा पढ़ गया और आहिस्ता-आहिस्ता एक महिने में "क्रांतिबीज" पूरी पढ़ ली! फिर एक के बाद दूसरी, ऐसे करीब-करीब आचार्च श्री का पूरा साहित्य पढ़ डाला। जब भी अहमदाबाद में आचार्य श्री आते तो प्रवचन के आधे घंटे पहले पहुंच जाता। एक दिन पिता जी ने कहा (अप्रेल '६९) कि 'माथेरान शिविर' में तुम क्यों नहीं जाते—जबकि इतना रस लेते हो इस व्यक्ति में। तो मैं माथेरान शिविर में भाग लेने गया और तब से जब भी मुंह से बात निकलती है—तो आज तक भी—आचार्य श्री से संबंधित बात निकलती है। इनका जो भी साहित्य पढ़ा, उनसे सुना जैसे भीतर रिकार्ड हो जाता था और जब भी कोई पूछता कि हम दोनों का एकाध घंटा उसी रिकार्ड को सुनने में व्यतीत होता; तब पता चलता कि आचार्य श्री की बात समझ में आई है। क्योंकि सुनते समय इतने शांत रूप से श्रवण होता था—जिसे आचार्य श्री सम्यक् श्रवण कहते हैं—कि न कोई विचार उठता, न कोई प्रश्नोत्तर की चेष्टा होती। प्रवचन के बाद शक होता था कि 'ये सब मैं समझ पा रहा हूं या नहीं। लेकिन मित्रों से चर्चा होते समय उनको समझा पा रहा था कि असली बात यह है। और जो लोग नहीं समझ पा रहे थे उनके प्रति मन में आश्चर्य के भाव से देखता था।

'माथेरान शिविर' के बाद ऐसा प्रतीत होता था कि उनके बिना मेरा जीवन खाली है। १९७० में मैं उत्तर व दक्षिण भारत की यात्रा में व्यस्त था, जबकि आचार्य श्री ने आजोल, नारगोल शिविर किये थे और अहमदाबाद में भी प्रवचन तथा ध्यान-प्रयोग किये थे। उसके बाद एक दिन खबर मिली कि २९ नवम्बर से ७ दिसम्बर तक आचार्य श्री गीता के १-२ अध्याय पर प्रवचन करेंगे, तो मैं खुशी से झूम उठा। लेकिन मेरे ख्याल में नहीं आया कि आचार्य श्री गीता पर क्या बोलेंगे? क्योंकि लोग कहते थे कि यह व्यक्ति खंडनात्मक दृष्टि-कोण रखता है, तब मैं उन्हें बताता कि अंधेरे में कोई बताये कि भाई उधर गड्ढा है, मत जाना, तो जरूरी नहीं कि वह व्यक्ति हमें सही रास्ता भी बताये। खैर! उनके मुंह से तो जो भी निकलेगा वह सुनने को मेरी आत्मा, मेरे प्राण राजी हैं—ऐसा भाव उठा। फिर तो पूरे दिन गीता प्रवचन में जो रसास्वाद लिया है, बस पूछो मत!

आखरी दिन बैंक में दोपहर के ढाई बजे मुझे ख्याल आया कि आज उनसे मिल लेता। फिर दिमाग में जो हलचल हुई महा आक्रमण ही था वह ! ढाई से लेकर सवा तीन बजे तक ये जारी रहा–'To go or not to go.' फिर हाथ से एकदम पेन गिरा और कुर्सी हटाके मैं आटोरिक्शा करके आचार्य श्री के निवास–स्थान पहुँचा। 'एपाइन्टमेंट' तो नहीं लिया था फिर भी आखिर में मुलाकात हुई।

'आचार्य श्री, मैं इतने अरसे से आपके परिचय में हूं, आपका साहित्य पढ़ा है, प्रवचन सुने हैं, 'माथेरान शिविर' में आया था तथा अभिनव–संन्यास पुस्तिका पढ़ी है।"

आचार्य श्री मन ही मन हँसते थे और मैं पूछने को था कि संन्यास के बारे में कुछ जानना चाहता हूं कि बोले, "तुम संन्यास क्यों नहीं लेते ?"

———

अंगों की टूटन-प्राणों की घुटन

सूनी–सूनी राह में एक अनगढ़ ठोस पत्थर–सी पड़ी थी मैं—शापित अहिल्या की भांति, अज्ञात की अनंत प्रतीक्षा पी–पीकर श्वासों की आवन–जावन बनी रही थी।

हजारों चरणों की रज उस पर चढ़ी, फिर भी पत्थर वैसे का वैसा रहा—कुछ रूपांतरण नहीं हुआ। बहुत–बहुत बारिशें आ–आकर नहला गईं, किंतु पत्थर, पत्थर ही रहा—नहीं पिघला। बहुतों ने आते–जाते ठुकराया, तो किसी ने उस पर थूका भी। कभी किसी ने उठाया और सम्हाला भी, पर केवल अपनी सुरक्षा के लिये।

आखिर एक दिन अचानक एक अजनबी राही प्रेम की वीणा बजाता, निजानंद में नाचता इस राह के मौन में आ पहुंचा। आते ही, राहगीर ने अपनी निर्मल निगाह की करुण करुणा से पत्थर को नहला दिया। झुककर उठाया अपने हाथों में और अपनी पैनी दृष्टि से उलट–पलटकर चारों ओर से देखा। देखते ही समझ गया कि अरे ! यह तो ऊपर ऊपर से शांति ओढ़े हुए पड़ा है, भीतर तो प्राणों में पुकार ही पुकार है, आर्तनाद है।

बस अब ये हाथ, हाथ नहीं रहे। हाथ तो बन गये कठोर हथौड़े और वह पैनी दृष्टि छैनी से भी ज्यादा धारदार निकली और वह प्रेम की वीणा

बजाने वाला राही तुरन्त कुशल कारीगर में बदल गया। बाहर से निस्साधन ऐसे सुदृढ़–सच्चे शिल्पी ने अंतस्–साधनों का खजाना खोलकर अपनी अद्भुत कुशलता और तीव्र गति से सुन्दर काम आरंभ कर दिया। पुलकित हो उठा पत्थर कि अब तो कुछ बन ही जाऊंगा। चोट पर चोट पड़ने लगी। पत्थर के पड़ोसी चिल्लाये–"छूट जा इन खतरनाक हाथों से यह तुझे जान से मार डालेगा।" बेचारा पत्थर क्षण भर घबड़ाया फिर भी मौन रहा। कला प्रेमी कलाकार ने आश्वस्त किया, "घबड़ा मत, भागना नहीं, मैं जो हूं साथ।"

धुन के पक्के, काम के सच्चे, श्रमित शिल्पी ने दिन देखा न रात, एक ही काम में डटकर लग गया, चारों ओर से तराशना–तोड़ना शुरू कर दिया। सौम्य शिल्पी की चोट को पत्थर इस आशा में झेलता रहा कि कुछ तो बन ही जाऊंगा। कभी कुछ धुँधला–सा आकार उभरते देख पत्थर बोल उठता है कि बस, अब बचा लो यहां से! पूरा बोल भी नहीं पाया कि फिर चोट पड़ी।

अपनी बेबसी में कई बार पत्थर रोता है, गिड़गिड़ाता है, हाथ पैर जोड़ता है, पर वहां कोई असर नहीं होता। वह तो मशगूल है निरन्तर तोड़ने में, बनाने में नहीं—सब प्रकार से मिटा देने में। तोड़ते–तोड़ते इतना तोड़ दिया कि कण–कण हुआ पत्थर कंपित है, भयभीत है कि चूर–चूर कर के शायद यह धूल धूसरित न कर दे!

अब मरा कि तब, ऐसी अधमरी हालत में कठिनाई से आखिरी पंक्तियां फूट पड़ीं मानो पत्थर के मुख से, "मेरे अंगों की टूटन मेरे प्राणों की घुटन हो रही है, पर सुनता कौन है!"

सोचता है पत्थर कि आखिर वह चाहता क्या है? इतने में अहिल्या की अनुकम्पित आत्मा अंतरिक्ष में गूंज उठी कि धैर्य रख, यह आदमी महान् है, पत्थर से भी इन्सान बनाता है।

प्रत्येक चोट अधिक मात्रा में पीड़ा ले आती है, पर चुपचाप सह रहा है, झेल रहा है, पीड़ा पी रहा है प्रेम से। सभी शिकायतें शांत हैं; किंतु अंतर एक मौन अनुगूंज से अलोड़ित है—

कलाकार जाने अपना काम!
आप हैं 'रजनीश' मेरे राम!!

तथाता के चरणों में
मीरा के प्रणाम, (जूनागढ़)

सत्य है तेरे मन में

—राजेन्द्र 'आकुल'
जबलपुर,

यहाँ वहाँ क्या खोज रहा है, सत्य है तेरे मन में !
लीन स्वयं में हो तज सब कुछ, जो भी है जीवन में !!
'स्वयं' छुपा तेरे अंतर में, ज्यों प्रकाश दीपक में
'मैं' को भूल जान 'खुद' को तू, निकट पहुंच अंतर में
'अहं' तुझे मिलने ना देगा, 'उससे' किसी जनम में !
सत्य है तेरे मन में !!
मिले कहाँ बाहर कस्तूरी, छुपी रहे जो मृग में
दौड़ा मन बाहर कितना ही, किन्तु 'ज्योति' है तुझ में
मन के द्वारा उतर 'स्वयं' में, भटक न तू जग-वन में !
सत्य है तेरे मन में !!
तन में तेरे मन है औ', मन में तेरे है आत्मा
दुश्मन ना बन निज तन का, आत्मा में है परमात्मा
अपने निश्चय बदल तुझे 'वो', मिले न आत्म-दमन में !
सत्य है तेरे मन में !!
छोड़ विचार विवेक जगा, ज्ञान छोड़ अज्ञात में जा
सब है अक्रिय होने में, क्रिया छोड़ अक्रिय हो जा
'स्वयं' बूंद सत्य है सागर, मिल जा है क्या उलझन में !
सत्य है तेरे मन में !!
सत्य असीम, अमाप है इसका, नहीं रूप आकार
सत्-दर्शन के हेतु तोड़ दे, शब्दों की दीवार
नहीं जान हो जा इक तू, 'उससे' अंतर्चेतन में !
सत्य है तेरे मन में !!
ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान इक जहँ, वहाँ 'स्वयं' से है साक्षात्
द्रष्टा, दृष्टि, दृश्य इक जहँ, वहां कहां होगा दृक्पात
सत् तो इक अनुभूति है जो, होती है आत्म-गमन में !
सत्य है तेरे मन में !!
चंचल मन चंचल है जब तक, मिलन न होगा 'उससे'
रोक न जब तक हो जाये, साक्षात् न मन का 'उससे'
मुक्ति नहीं है जड़ता में, है मुक्ति अपूर्व मिलन में !
सत्य है तेरे मन में !!

(आचार्य श्री के अमृत-वचनों पर आधारित)

भेंट वार्त्ता---

अज्ञात की परतों से

(भगवान श्री द्वारा दिये गए प्रश्नोत्तर)

प्रश्न—आपकी बातों में कुछ बातें ऐसी हैं जो बुद्धि के तल पर विचार करने से समझ में नहीं आतीं, तर्क की दृष्टि से उनका कोई तालमेल नहीं बैठता। जैसा कि आपने सेक्स के संबंध में कहा है कि आपका सेक्स का अनुभव पिछले जन्मों का है और पिछले जन्म के अनुभव इस जन्म में भी काम आते हैं। यह बात तर्क और बुद्धि की पकड़ के बाहर है। इसे हम कैसे मान लें ?

उत्तर—जीवन में सभी कुछ बुद्धि के तल पर नहीं समझा जा सकता है। पहली बात तो यह कि जीवन में सभी कुछ बुद्धि के तल पर नहीं समझा जा सकता। और ऐसा मैं मानता भी नहीं कि सभी कुछ समझे जाने की कोशिश भी उचित है, बुद्धि सभी कुछ समझ सकती है। सीमाएं हैं बुद्धि की और एक जगह आ जाती है जहां आगे नहीं समझ पाती, जहां सीमाएं आ जाती हैं वहां दो उपाय हैं—या तो हम वापस लौट जायें या हम बुद्धि को छोड़ दें, बुद्धि के ऊपर उठें। निश्चित ही 'कम्युनिकेशन' का जहां तक सवाल है वह वहीं तक संभव है जहां तक बुद्धि की बात है। उसके आगे बुद्धिगत 'इंटेलेक्चुअल कम्युनिकेशन, तो संभव नहीं है लेकिन 'रिवर्ट' संभव है। 'रिवर्ट' बड़ी और बात है। अगर हम सहानुभूति से किसी दूसरे व्यक्ति की ऐसी बातों को भी समझने के लिए आतुर हैं जो तर्क और बुद्धि की पकड़ में नहीं आतीं तो शायद उस सहानुभूति के क्षण में जो बातें भी झलक ला सकती हैं और किसी तल पर संवाद (कम्युनिकेशन) हो सकता है। लेकिन उस तल पर हुए संवाद के लिए न तर्क का कोई अर्थ नहीं है। जैसे रात मैंने सपना देखा। तो मैंने सपना देखा या नहीं, आपके लिए तर्कगत समझाने का मेरे पास कोई उपाय नहीं। मैं कहता हूं, मैंने सपना देखा और आप पूछ सकते है कि हम कैसे मानें कि आपने सपना देखा। सपना देखने का भी सपना हो सकता है, सिर्फ आपका ख्याल हो आप वहम में हों, सुबह आपको लगता है कि आपने देखा, आपने कभी न देखा

हो। तो हमारे पास तर्कगत कोई उपाय नहीं है। अभी भी मेरे सिर में दर्द हो तो कोई रास्ता नहीं है कि मैं आपको समझा सकूं कि मेरे सिर में दर्द है और दर्द है तो कैसा दर्द है। एक सहानुभूति तो समझ सकती है मेरी पीड़ा, लेकिन फिर भी वह अनुमान है, बाहर से दर्द को समझाने का कोई बौद्धिक उपाय नहीं है।

एक मजाक मुझे ख्याल आता है। मेरे एक शिक्षक थे, वे वर्ष शुरू होता तो पहली बात विद्यार्थियों से कहते थे कि मैं सिर्फ बुखार को बीमारी मानता हूं, पेट दर्द और सिर दर्द को मैं बीमारी नहीं मानता हूं, इसलिए पेट दर्द और सिर दर्द में तो छुट्टी नहीं मिल सकेगी, क्योंकि उनको मैं बीमारी मानता ही नहीं, मैं सिर्फ बुखार को बीमारी मानता हूं। उसको मैं जान सकता हूं। तुम्हारे सिर दर्द का मुझे कोई भरोसा नहीं, तुम्हारे पेट दर्द का मुझे कोई भरोसा नहीं इसलिए अगर हो भी तो तुम जानो, लेकिन उसके लिए छुट्टी नहीं दे सकता हूं। जब पहली दफा मैं उनकी कक्षा में गया तो सचमुच मैं भी मुसीबत में पड़ गया। मैंने उनसे कहा, आप कह क्या रहे हैं? उन्होंने कहा, मैं मानता ही नहीं कि सिर दर्द है और अगर है तुझे तो मुझे समझाना पड़ेगा और अगर बौद्धिक रीति से मुझे न समझाया कि सिर दर्द है तब तक मैं छुट्टी देने को राजी नहीं हूं। समझाने की बात बड़ी कठिन है। नहीं समझाया जा सकता है कि सिरदर्द है, लेकिन फिर भी सिरदर्द है।

जो नहीं समझाया जा सकता है वह इसी कारण नहीं है, ऐसा मानने का कोई उपाय नहीं है। जैसा कि मैंने कहा कि पिछले जन्म का अनुभव समझाना बहुत मुश्किल है। एक ही रास्ता है समझाने का और वह रास्ता यह है कि जिस भांति मैं पिछले जन्म के अनुभव में गया हूं उस विधि को आपको बताऊं और शायद आप भी सफल हो जायें। और तो कोई उपाय नहीं है। जिस भांति मेरे सिर में दर्द हुआ है एक दीवाल से टकराकर तो मैं आपसे कहूं कि आप भी सब दीवाल से टकरा लें तो शायद दर्द हो जाय। फिर भी पक्का नहीं है क्योंकि सभी दीवाल से टकरायें तो दर्द हो जाय यह भी पक्का नहीं है, तो इतना ही मैं कह सकता हूं कि पिछला जन्म है, ऐसी मेरी समझ है। और इसके लिए क्या दलील हो सकती है? इसके लिए एक ही दलील मेरे पास हो सकती है वह यह कि जिस विधि से मैं पिछले जन्म में गया हूं वह विधि आपको कहूं। आपको लगे कि देखना है जाकर, तो आप देख लें। जरूरी नहीं है कि मेरी विधि आपको काम कर जाय और यह भी

जरूरी नहीं है कि मेरी विधि से आपको जो अनुभव हो वह आपको सत्य मालूम पड़े या सपना मालूम पड़े, यह भी जरूरी नहीं है। हो सकता है कि आपको लगे कि यह भी एक सपना है जो आपके आगे खुल गया है।

एक महिला मेरे पास कुछ दिन तक प्रयोग कर रही थी। उसमें बड़ी आतुरता थी। जो आपने पूछा है वही उसने मुझसे पूछा हुआ था। वह कालेज में प्रोफेसर है। उसने मुझसे पूछा कि और सब बातें तो ठीक हैं, लेकिन कुछ बातें आप ऐसी कह देते हैं कि वहां बात मुश्किल में पड़ जाती है। एक तरफ आप कहते हैं, दूसरे पर विश्वास मत करो, दूसरी तरफ आप ऐसी बात कहते हैं कि सिवाय विश्वास के उसमें कोई उपाय नहीं है। तो मेरा उससे यह कहना था कि न तो मैं यह कहता हू कि विश्वास करो, न मैं यह कहता हूं कि अविश्वास करो। इतना भी मान सकते हैं कि कुछ बातें हैं जो यह आदमी कह रहा है जो कि तर्क के भीतर नहीं पकड़ में आती हैं। लेकिन सभी कुछ तर्क के भीतर पकड़ में नहीं आता। मैंने उससे कहा कि प्रयोग करके देखो पहले जन्म के लिए। उसने प्रयोग करना शुरू किया। उसने ६ महीने और सच में निष्ठा से प्रयोग किया। उस प्रयोग में कोई एक दिन रात के दो बजे वह आयी इतनी घबरा गयी थी, इतनी परेशान थी कि उसने कहा, मुझे किसी भी तरह भूल जाना है, जो मुझे दिखायी पड़ा है, क्योंकि मुझे ख्याल आया कि पिछले जन्म में देवदासी थी किसी मंदिर में और वैश्या का काम करती थी और जो उसे स्मरण आना शुरू हुआ वह उसके आज के अहंकार को भी पीड़ा जनक और दुखदायी था। फिर वह मुझसे कहने लगी, मैं यह भी चाहती हूं कि यह मुझे याद न आये और मुझे यह भी पक्का नहीं होता है कि यह सच है या सपना देख रही हूं, इसका भी पक्का करना बहुत कठिन है कि यह सपना ही है। लेकिन सपने और अनुभव के सत्यों की भी जांच करने का निजी, 'सब्जेक्टिव' उपाय है। रात सपने में मैं खाना खा लेता हूं तब मुझे पता नहीं चलता कि यह सपना है या सच। सुबह जागकर पता चलता था क्योंकि पेट तो खाली रह गया। रात सपने में सिरदर्द हो और दिन में जागने में भी सिर दर्द हो तो सपने में पता लगाना मुश्किल है कि जो दर्द हो रहा है वह सच में हो रहा है कि सिर्फ कल्पना है। लेकिन जागने में पता चलता है शायद कल्पना ही थी, क्योंकि जागने में वह दर्द कहीं नहीं रह गया, नींद टूटते ही खो गया।

पुनर्जन्म के भी स्मरण हैं, वह सपने नहीं हैं; क्योंकि इसके दो कारण हैं, क्योंकि एक ही सपने में दोबारा प्रवेश असंभव है। आप एक ही सपने में दोबारा प्रवेश नहीं कर सकते हैं, आप लाख उपाय करें तो उसी सपने को ला नहीं सकते, आपके हाथ के बाहर है। लेकिन पिछले जन्म की स्मृति को आप एकही स्मृति पर लाखदफा प्रवेश कर सकते हैं और वह ठीक वैसे ही वापस लौटती है जैसे पहली बार आयी थी, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। यह जो पिछले जन्म की बात कह रहा हूं उसमें 'कम्युनिकेशन' संभव नहीं, 'एक्सपीरियंस' संभव है और जब मैं बात कर रहा हूं, तो सिर्फ इसीलिए कर रहा हूं कि शायद किन्हीं को ख्याल आ जाय तो वह प्रयोग करे। मेरी इच्छा भी नहीं है कि मेरी बात आप मानें। संदिग्ध होना उचित है और मैं तो यह भी कहता हूं कि आपको भी अनुभव हो जाय तब भी एकदम से मान लें वह उचित नहीं है। तब भी संदिग्ध होना उचित है, क्योंकि कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मन इतना अद्‌भुत है और इतना धोखे पैदा कर लेता है कि कुछ भी कहना मुश्किल है। लेकिन यह भी एक धोखा हो जायगा कि हम यह कह दें कि ऐसे कोई तथ्य होते ही नहीं, जो कि 'कम्युनिकेट' नहीं किये जा सकते हैं। तो ऐसा मैं मानता हूं कि बहुत कुछ तो संवादित हो जाता है, बहुत कुछ संवाद के बाहर रह जाता है और जब बहुत कुछ संवादित होता है तब भी जो सत्य कहते हैं वहीं संवादित नहीं होता, बल्कि शब्दों के आस-पास बहुत कुछ संवादित हो जाता है, जो कि शब्द नहीं कहते हैं और जब हम तर्क देते हैं और जब हम तर्क से कुछ ज्यादा समझने की कोशिश करते हैं, तब जरूरी नहीं है कि हम जो तर्क से सिद्ध करने जा रहे हैं, वह संवादित हो। अक्सर तो यही होता है कि अगर सहानुभूति से दो लोगों ने बात की है, 'डायलाग' किया है, चर्चा की है तो बहुत कुछ परिधि में संवादित होता है।

मेरी दृष्टि में मुझे पिछला जन्म एक सत्य मालूम पड़ता है और ऐसी भी मेरी समझ है कि पिछले जन्म के अनुभव इस जन्म के अनुभव को प्रभावित करते हैं। असल में कल का अनुभव अगर कल था तो आज को प्रभावित करेगा ही। यह हो सकता है कि कल का अनुभव भूल गया होऊँ तब भी वह आज मुझे प्रभावित करेगा। स्मरण जरूरी नहीं है प्रभावित होने के लिए। तो वह जो मैंने कहा कि संभोग के अनुभव पिछले जन्मों से भी काम करते हैं, सारे अनुभव काम करते हैं, फिर जितने गहरे अनुभव हों उतने ज्यादा काम करते हैं। और संभोग मेरी दृष्टि में 'पीक एक्सपीरियंस' (शिखरस्थ अनुभव)

है। अगर वह हुआ है अनुभव तो वह जन्मों–जन्मों तक प्रभाव रेखा छोड़ेगा। लेकिन यह मेरी बात है, और आप बिल्कुल ठीक कहते हैं कि यहां जाकर आपको लगे कि कोई 'कम्युनिकेशन' नहीं हुआ। नहीं होगा, क्योंकि मैं अपने अनुभव की बात कर रहा हूं जो आपका अनुभव नहीं है।

नहीं, 'बिलीव' करने की भी बात नहीं है, 'पोसिबिलिटी' की बात ही काफी है। इतनी सहानुभूति संवाद के लिए पर्याप्त है कि हम एक दूसरे की संभावना को स्वीकार करके चलें कि ऐसा हो सकता है। इतना भी अगर है तो संवाद हो जायगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि आपने 'रिफ्यूज' किया, 'रिफ्यूज' आप नहीं कर रहे हैं, आप एक तथ्य ही कह रहे हैं कि आपको वहां जाकर लगे कि अचानक यहां कोई बात हमारी पकड़ के बाहर छूट गयी, जो हमारी पकड़ में नहीं आ रही है। हमारी पकड़ में भी वही आ पाता है, जो हमारा किसी तरह का समान अनुभव हो, नहीं तो पकड़ में नहीं आ पाता। अब जैसे कि आप तो यह कह रहे हैं, उसी घटना को लेकर और लोगों ने भी मुझे लिखा। कई लोगों ने मुझे लिखा कि हमें संभोग के अनुभव हैं; लेकिन 'टाइमलेसनेस' का नहीं। लोगों ने मुझे लिखा कि आप जो कहते हैं कि संभोग से कालरहितता आ जाती है, कालातीत मालूम हो जाता है। तो मुझे तो संभोग का अनुभव है, लेकिन हमने तो कभी ऐसा क्षण अनुभव नहीं किया, जब समय मिट गया हो, समय तो पूरी तरह बना रहा है। पिछले जन्म की बात ही छोड़ दें। उनको यहीं जाकर बात अटकाव–सी हो गयी और उनका भी अटकाव ठीक है, क्योंकि बहुत से लोग असल में संभोग के नाम पर जो करते हैं वह संभोग है ही नहीं। एक तो संभोग का पॉजीटिव अर्थ है और एक निगेटिव अर्थ है। एक तो संभोग वह है, जो आपके किसी बोझ को उतार जाता है, कहीं आपको ले नहीं जाता, कहीं पहुंचाता नहीं, किसी गहराई में, किसी अनुभव में नहीं लाता। हां, एक तनाव है, एक बोझ है, एक परेशानी है, उसको निकाल जाता है। एक 'फिजोलाजिकल' अर्थ है, इससे ज्यादा अर्थ नहीं है। एक बेचैनी है शरीर के तल पर, वह उससे आपको मुक्त कर जाता है। ऐसा ही संभोग का अनुभव है, तो उसमें कालरहितता का अनुभव नहीं होगा और फिर बात 'कम्युनिकेट' नहीं होगी, क्योंकि उसे लगेगा कि 'टाइमलेसनेस' से कोई चीज मालूम नहीं पड़ती, न 'इगोलेसनेस' से कोई चीज मालूम पड़ती है। तब इसका मतलब यह हुआ, मेरी तरफ मतलब यह हुआ कि संभोग का अनुभव ही नहीं हुआ। असल में वीर्य स्खलन संभोग नहीं है और उस स्खलन के कितने भी उपाय खोज लें, उससे संभोग का कोई

संबंध सीधा नहीं है। संभोग तो मनोदशा है, दो व्यक्तियों के इतने तीव्र आतुर मिलन की अवस्था है जहाँ कि उनकी सारी सीमाएं खो गयी हैं। सारा व्यक्तित्व खो गया है, जहां कि उनका अपना होने का बोध है वह भी चला गया है और वे किसी बड़े बोध में दोनों समाविष्ट हो गये हैं, एक बड़े वृत्त में समाविष्ट हो गये हैं, जिसमें दो इकाइयां नहीं हैं, अब एक ही इकाई है। ऐसी प्रतीति का अगार अनुभव हो सके तो ही समय मुक्त और अहंकार मुक्तता का अनुभव हो, नहीं तो वह भी कम्युनिकेशन नहीं हो पायेगा और कम्युनिकेट नहीं हो पायेगा और कम्युनिकेशन की कठिनाइयां तो बहुत हैं। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि जैसे ही हम शब्द में कहते हैं वैसे ही जो कहना चाहते हैं, वह ठीक-ठीक उतर नहीं पाता। फिर जब हम सुनते हैं वह वही नहीं होता है जो कहा गया है, क्योंकि हम वही सुन सकते हैं जो हम सुन सकते हैं। बस फासले बढ़ने शुरू हो जाते हैं। अब यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि शब्द के अतिरिक्त कोई माध्यम नहीं है और शब्द से बेकार कोई माध्यम नहीं है। शब्द से ही कहना पड़ेगा, अशब्द से कुछ भी नहीं कहा जा पाता।

तो जैसे अंधेरे में टटोलते रह जाते हैं। 'कम्युनिकेशन' बड़े से बड़ा 'प्राबलम' है और दो आदमियों के बीच, दो व्यक्तियों के बीच शायद प्रेम के किसी क्षण में कोई चीज कोई बात संवादित हो जाती है, बात-चीत में संवादित नहीं हो पाती, और जब हम बोल रहे हैं उस क्षण में प्रेम की मनोदशा खोजने की बात मुश्किल हो जाती है। इधर मेरा अपना ख्याल यह है कि जब कि मैं बोल रहा हूं, तो किसी न किसी अर्थ में बोलना आक्रमण है, आपके ऊपर एक हमला कर रहा हूं और जाने–अनजाने आप 'डिफेंस' की हालत में कुछ इन्तजाम कर लेते हैं और सुरक्षा की तैयारी कर लेते हैं और तब बात–चीत चलती रहती है और उसमें बराबर एक संघर्ष बन जाता है बजाय संवाद के। और जहां संवाद की स्थिति होती है, जैसे मैं प्रेम के क्षण में किसी को प्रेम करता हूं। उसके पास बैठा हूं, जहाँ कि कोई आक्रमण नहीं है, कोई सुरक्षा का सवाल नहीं है, तो वहां शब्द खो जाते हैं, क्योंकि प्रेम इतना महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है कि बोलने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। **जहां संवाद होता है वहाँ बोलना खो जाता है, जहां बोलना होता है वहाँ संवाद की सम्भावना कम हो जाती है।** यह कठिनाई है। अब दो प्रेमी संवादित हो सकते हैं, लेकिन बोलते नहीं हैं, चुपचाप हो जाते हैं। दो जब बोलते हैं, बोलने की चेष्टा करते हैं, समझाने की चेष्टा करते हैं, लेकिन प्रेमी

नहीं होते। हमारी पुरानी जो एक धारणा थी वह मुझे मूल्यवान मालूम पड़ती है। गलत शब्द दे दिया था इसलिए वह गड़बड़ हो गयी थी। हम इस देश में मानते थे कि श्रद्धा के बिना समझना नहीं हो सकता है। श्रद्धा शब्द जरा गलत हो गया है, गलत यात्रा ले ली उसने। लेकिन श्रद्धा का मतलब मेरी दृष्टि में कुल इतना ही होता है कि ऐसे क्षण में कि जब हम बड़े प्रेम से भरे हुए हैं, जब कि समझने की आतुरता कम और प्रेम का भाव ज्यादा है, तब शायद संवाद हो सकता है, क्योंकि तब कोई आक्रामक नहीं है और तब कोई 'डिफेंस' में नहीं है, लेकिन हम जब आप एक शब्द उपयोग करते हैं तो आप कहते हैं बहुत बढ़िया है। आप कहते हैं 'इंटलेक्चुअल' है और 'इंटलेक्ट' बहुत छुईमुई है। वह पूरे वक्त सजग है सुरक्षा के लिए भी कि कोई हमला न हो जाय। जरूर उसका काम भी वही है, वह होना जरूरी है। बुद्धि का मतलब यह है कि वह अपनी सुरक्षा करे सब तरफ से। तो वह बहुत सुरक्षा की तैयारी में हैं। **सबसे बड़ा जो डर है उसे, उससे विजातीय विचार कोई भीतर न चला जाय उसके। जो उसकी अब तक की मान्यता है, समझ है, एक 'हार्मनी' है उसमें, एक विजातीय बात भीतर चली जाय, तो उपद्रव खड़ा होगा, परेशानी होगी और किसी तरह का रास्ता खोल लेना पड़ेगा।**

प्रश्न : बुद्ध होने की तैयारी है ?

उत्तर : थोड़ा-सा फर्क है। हां अगर शब्द की बहुत गहराई में जायें, बिल्कुल प्राचीन से प्राचीन तो वही मतलब है। लेकिन बुद्ध होने में और बुद्धिमान होने में बड़ा फर्क है। बुद्ध से हम मतलब लेते हैं प्रबुद्ध होने का, 'एनलाइटेंड' होने का, जागा हुआ होने का। बुद्धि से मतलब लेते हैं सोच-विचार का और मजा है कि इन दोनों बातों में विरोध है। **जितना जागा हुआ आदमी होगा उतना कम सोच-विचार करता है। असल में सोच-विचार 'सब्स्टीट्यूट' है जागे हुए होने का।** एक अंधा आदमी है, उसे इस कमरे से भाग जाना है, तो वह सोचता है, दरवाजा कहां है, रास्ता कहां है ? पूछता है। उठने के पहले पच्चीस दफे सोचता है, कहीं टकरा न जाऊं। एक आंख वाला है, वह उठता है और निकल जाता है, वह पूछता नहीं है कि दरवाजा कहां है। वह जो अंधा आदमी है, उसको पूछना, सोचना, खोजना सब पड़ता है, क्योंकि उसे आंख न होने की वजह से सारे काम करने पड़ते हैं। आँख वाले आदमी से पूछियेगा कि दरवाजा कहां है, तो वह बतायेगा ? निकलना हो तो उसे पता नहीं कि वह दरवाजा से निकल गया। वह निकल ही गया है और

उसने न यह सोचा कि यह दरवाजा है, न फिक्र की, न किसी से पूछा, बस निकल गया है। निकल जाना इतना सहज हुआ है कि उसमें कहीं सोच-विचार नहीं आया। **बुद्ध को जिस अर्थ में हम वहां शब्द का प्रयोग करते हैं वहां विचार नहीं है, वहां उसका मतलब ऐसे व्यक्ति से जो देख रहा है और निकल गया है। जहां हम बुद्धि का प्रयोग करते हैं वहां बड़ी और बात है। वहां हम यह कह रहे हैं कि जहां हमें दिखायी नहीं पड़ रहा है, लेकिन हम सोच-सोचकर, टटोल-टटोलकर निकलने की कोशिश कर रहे हैं। जो देखने वाला कर सका है बिना सोचे-विचारे, वह हम सोच-विचारकर करने की कोशिश कर रहे हैं।**

तो ऐसा हो सकता है, बुद्ध तो जागकर बुद्ध होते हैं। उनके पीछे जो अनुयायी होता है वह सोच-विचारकर होता है। वह सब सोच-विचार की तैयारी करता है। उसी ढंग का खाना खाता है, उसी ढंग के कपड़े पहनता है, वैसा ही चलता है, बैठता है, उठता है। वह पूछता है बुद्ध से कि कैसे उठते हो आप, कैसे बैठते हो, कैसे सोते हो। वह सब वैसा ही करता है। वह सब कर लेता है फिर भी पाता है कि बात नहीं घटी। वह घट भी नहीं सकती क्योंकि वह—जो प्रबुद्ध होना है वह—बुद्धि का जोड़ नहीं है। **असल में बुद्ध होना एक अर्थ में बुद्धि का पूरी तरह असफल होकर टूट जाना है, यानी वह उस क्षण में घटित होगा, जहाँ बुद्धि ने असमर्थता पा ली है।** दुनिया में सब खोज-बीन करके उस जगह आ गयी, जहां थक गयी और जहां उसने कहा—आगे हमारी कोई गति नहीं है, वह सब व्यर्थ हो गया, अब कुछ खोजने को बचा नहीं, खोज सकते नहीं, सब कुछ टूट गया। बुद्धि की परिपूर्ण असफलता है। वहां प्रबुद्ध होने की पहली संभावना है। जहां सब सोच-विचार थक गया, वहीं कुछ होता है। जहां 'फिलोसफी' हार गयी, टूट गयी, गिर गयी वहां 'रिलीजन' शुरू है। इसलिए शब्द से तो जो आप कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। बुद्ध और बुद्धि में एक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, लेकिन बड़े अलग भाव से प्रयुक्त हुए हैं। **बुद्ध को बुद्धिमान आदमी नहीं कह सकते हैं, बुद्ध को प्रबुद्ध ही कह सकते हैं, ऐसा आदमी जो जाग गया।** अब बुद्धि का जैसे सवाल ही नहीं रह गया है।

तो वह जो मैं कह रहा था कि जब हम कहते हैं 'इंटलेक्चुअल कम्युनिकेशन', तब और बड़ा मुश्किल हो जाता है मामला। **मेरे ख्याल से बौद्धिक संवाद जैसी चीज तो असंभव है। इसलिए असंभव है कि बुद्धि का**

जो काम है वह संवाद नहीं है। बुद्धि का काम विवाद है। यानी बुद्धि का जो मौलिक काम है वह विवाद का है, संवाद का नहीं है। इसलिए जब हम सम्वाद में होते हैं वहाँ अक्सर हम हृदय की बातें करने लगते हैं बुद्धि की बातें तत्काल छोड़ देते हैं। और उसका और कोई कारण नहीं, क्योंकि किसी को प्रेम करते हैं, तो यह नहीं कहते कि मैं बौद्धिक रूप से प्रेम करता हूं। इसमें कोई मतलब ही नहीं होता। तो मैं कहता हूं उसमें बुद्धि का कोई लेना देना नहीं, मैं तो हृदय से प्रेम करता हूं। हृदय जैसी चीज कहीं होती नहीं शरीर में। हम यह कह रहे हैं कि बुद्धि को कुछ लेना देना नहीं है।

एक बहुत छोटी–सी घटना घटी है। मजनू को उसके गाँव के राजा ने बुला लिया और उससे कहा कि तू बिल्कुल पागल हो गया है लैला के लिए। इतनी साधारण लड़की के लिए इतने दीवाने क्यों हो ? कुछ तो सोचो, कुछ तो समझो। मजनू ने कहा कि अगर सोच समझ ही सकता तो, जो आप कहते हैं, वही मैं भी कहता। वही तो तकलीफ हो गयी कि सोच समझ नहीं पा रहा हूं। राजा ने कहा कि मैं और अच्छी लड़कियां बुलाये देता हूं। मेरे महल में लड़कियां हैं, तू उनको देख, एक से एक सुन्दर लड़कियां हैं। उसने कहा, मैं सबको देखूंगा, लेकिन लैला मुझे दिखायी नहीं पड़ेगी, क्योंकि, जो उन लड़कियों को देखूंगा उनमें मुझे लैला नहीं दिखेगी और जब से मैंने लैला को देखा तब से मैं अब किसी लड़की को नहीं देख सकता। उपाय ही नहीं कोई। राजा ने कहा, तू मूढ़ है बिल्कुल। उसने कहा, ऐसा ही समझें। अगर मूढ़ न होता तो जो आप कहते हैं, वही मैं भी कहता। इसमें कोई फर्क नहीं है। आप जो कहते बिल्कुल ठीक कहते हैं। **जहाँ तक बुद्धि की बात है, आप ठीक कहते हैं, मैं ही गलत हूं लेकिन बुद्धि से मैंने प्रेम किया नहीं और मैं पूछता हूं, बुद्धि से कब प्रेम किया गया है ?** वह जवाब तो नहीं दे सकता राजा, और हम नहीं दे सकते जवाब कि बुद्धि से कब प्रेम किया गया है ?

असल में अगर हम ठीक से देखें तो हमारी बुद्धि का सारा विकास जीवन के संघर्ष से पैदा हुआ है 'इंस्ट्रूमेंट' की तरह। हमने जीवन के संघर्ष में उसका उपयोग किया है। वह जो शारदा बिल की लड़ाई हो रही है उसमें बुद्धि ने हमें काम दिया। शायद इसलिये आदमी बच गया और जानवर हार गये। **जहाँ लड़ाई का सम्बन्ध है वहाँ बुद्धि बड़ी उपयोगी है और जहाँ प्रेम का सम्बन्ध है वहाँ एकदम बेकार है, इसलिए परमात्मा से बुद्धि का नाता जोड़ना, सत्य से बुद्धि का नाता जोड़ना जरा कठिन है।** हां, लड़ाई करनी हो,

बम बनाना हो तो बुद्धि का काम हो जाता है। तो संवाद जो है वह एक तरह की लड़ाई नहीं है; बल्कि लड़ाई से हट जाना है और जब हम कहते हैं कि **बौद्धिक सम्वाद है तब 'कॉन्ट्राडिक्ट्री' हैं वे दोनों शब्द। सम्वाद और बुद्धि का कोई सम्बन्ध नहीं है,** लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम बुद्धि को खो दें, तब संवाद होगा। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि हम अबुद्धिमान हो जायं, कि हम अंधे होकर बैठ जायं तो संवाद होगा।

लेकिन तकलीफ यह है कि वह भी कहेगा जो न कहा जा सकता हो, उसे आप ही कह जायें। लेकिन यह भी कहना होगा, अगर मैं यह कहूं कि परमात्मा को नहीं कहा जा सकता तो मैंने काफी कह दिया, जो कहा जा सकता था वह कह ही दिया। हमारी कठिनाई यह है कि हमारे पास सिवाय भाषा के कोई उपाय नहीं है। यानी मामला ऐसा है कि मेरे हाथ में तलवार है और उसी से मुझे आपका आलिंगन करना है। यह बड़ी मुसीबत की बात है। आलिंगन करना है और है हाथ में तलवार, और कोई रास्ता नहीं है मेरे पास और प्रेम करना है आपसे और गले मिलना है आपसे। तलवार ही मेरे पास है। यह तलवार की वजह से गला कटने का डर है और इस तलवार के सिवाय मेरे पास कोई उपाय नहीं है। आदमी की सबसे बड़ी तकलीफ यह है कि उसके पास कहने को शब्द हैं, बताने को तर्क है, उपयोग करने के लिए बुद्धि है और ये तीनों के तीनों बिल्कुल बेमानी हैं—किसी अर्थों में। कुछ है जहां यह सब बेमानी है और सारी जिन्दगी को तकलीफ यह है और उसकी तकलीफ नहीं समझी जा सकी है ठीक से।

'मैं' से बड़ी और कोई भूल नहीं। प्रभु के मार्ग में वही सबसे बड़ी बाधा है। जो उस अवरोध को पार नहीं करते, सत्य के मार्ग पर उनकी कोई गति नहीं होती है।

-()-

प्रभु के द्वार पर हमारे 'मैं' का ही ताला है। जो उसे तोड़ देते हैं, वे पाते हैं कि द्वार तो सदा से ही खुले थे।

भगवान तथागत

(भगवान श्री की रेडियो वार्त्ता से)

संकलन : मां प्रेम रश्मि,

(जबलपुर)

मनुष्य का जीवन–पथ अंधकार पूर्ण है। जन्म से लेकर मृत्यु तक अंधकार का ही साक्षात् है। अपने आप जीवन में न तो कोई अर्थ है और न कोई अभिप्राय ही। स्वयं का होना ही व्यर्थ मालूम होता है और इस व्यर्थता के बोझ पर दुख, संताप और चिन्ताओं के अंतहीन अतिथि भी हैं। आनन्द की कोई झलक ही नहीं मिलती और कामनायें और तृष्णायें मन को अनेक दुष्पूर घावों से भर देती हैं। **दुख और दुख के इस सारे उपक्रम के पीछे मृत्यु की छाया तो सदा खड़ी ही है। जन्म के बाद हम प्रतिक्षण मरते ही चलते हैं। जिसे हम जीवन कहते हैं क्या वह निरन्तर मरते जाने की एक लम्बी श्रृंखला ही नहीं है ?** जो भी अपने होने के तथ्य के प्रति आंखें खोलता है, उसे यह सब दीखता है। विचारशील चेतना इस जीवन को ही जीवन नहीं मान सकती। मात्र दुख को ही स्वयं के होने के लिए पर्याप्त कारण और प्रेरणा नहीं माना जा सकता। यदि यही जीवन है तो, जो विमर्शशील हैं, वे स्वयं को अपने ही हाथों विनष्ट कर लेने को भी व्यर्थ जीने से श्रेयस्कर समझेंगे। जीवन के वास्तविक अर्थ और आनन्द की प्रतिष्ठा के अभाव में जीना कैसे वरेण्य हो सकता है ? अर्थहीनता से अभिशप्त जीवन तो केवल अंधों और मूर्च्छितों को ही वरदान प्रतीत होगा; किंतु जिसके पास भी विचार की सचेतन शक्ति है, वह इस अंधी और अर्थहीन यात्रा में भागीदार होने को राजी नहीं हो सकता। स्वयं के प्रति जागते ही, हम तथाकथित जीवन के दुःख–स्वप्न से भी व्यक्ति जाग जाता है।

भगवान तथागत बुद्ध ने भी एक दिन जागकर स्वयं को ऐसी ही व्यर्थता में घिरा हुआ पाया था। फिर उन्हें साधारण रूप से जीना कठिन हो गया। जीवन की खोज जिसमें सजग हो जाती है, वह साधारण अर्थों में जी भी नहीं सकता। वे सब कुछ छोड़ सत्य पाने को निकल पड़े। निश्चय ही वास्तविक जीवन पाने के लिए यह अवास्तविक जीवन पूरा का पूरा ही दांव

पर लगाना पड़ता है। **कोई चाहे कि स्वप्न में भी रहे और जाग भी जावे, तो यह तो सम्भव नहीं है! जागरण के लिए तो स्वप्न को छोड़ना ही होगा। उतना मूल्य चुकाना तो अनिवार्य है।**

सत्य—जीवन की खोज के लिए बुद्ध ने क्या किया? सर्वप्रथम वे गुरू की खोज में गये। वही प्रचलित परंपरा थी। लेकिन कोई भी गुरू उन्हें सत्य न दे सका। सत्य दिया भी नहीं जा सकता। सत्य कोई वस्तु नहीं है। वह तो है जीवन्त अनुभूति। उसे तो स्वयं के अंतरस्थ केन्द्र पर स्वयं ही पाना होता है। बहुत भटकने पर यह तथ्य उन्हें दिखाई पड़ा। उन्होंने जाना कि शास्त्रों और शास्ताओं से सत्य नहीं पाया जा सकता। सिद्धांत तो वहाँ थे लेकिन सिद्धांत तो सत्य नहीं हैं। शब्द तो वहां थे, लेकिन शब्द तो सत्य नहीं है। **जिसकी प्यास वास्तविक है, वह पानी के सम्बन्ध में प्रतिपादित सिद्धांतों से तृप्त नहीं हो सकता, उसे तो सरोवर ही खोजना होगा।** सत्य के प्यासे भी शास्त्रों में तृप्त नहीं होते। और जो तृप्त हो जावें, जानना चाहिए कि उनकी प्यास सच्ची नहीं है।

शास्त्रों, शब्दों और शास्ताओं की दिशा को निरर्थक और कहीं न पहुंचाने वाली जानकर स्वयं कठोर तपश्चर्या में संलग्न हुए। तप की—घोर तप की तब बड़ी प्रतिष्ठा थी। शरीर-भोग एक अति थी, तो शरीर का दमन और उत्पीड़न दूसरी अति। स्वयं के **शरीर के साथ शत्रुता और हिंसा तब बड़ी सम्मानित थी। शरीर-भोग की दिशा में जैसे नये—नये आविष्कार होते थे, ऐसे ही शरीर—उत्पीड़न की दिशा में भी हुए थे। यह भोग की ही प्रतिक्रिया थी। यह उसका ही उल्टा रूप था।** बुद्ध ने भी समाज से अनुमोदित यह मार्ग पकड़ा। वर्षों तक वे स्वयं के शरीर से लड़ते रहे। शरीर कृश और अशक्त हो गया, लेकिन सत्य निकट नहीं आया। आत्म-हिंसा से सत्य को उपलब्धि का कोई सम्बन्ध भी नहीं है। वह विचार ही जड़तापूर्ण है और सदियों के अंधविश्वास का घनीभूत रूप है। वासना ऐसे नहीं मरती है और न ही मन ही शांत होता है। और मन शांत न हो तो सत्य का साक्षात् ही कैसे होगा? मन के शांत और निर्मल दर्पण में ही तो उसका प्रतिफलन होता है—जो कि है। लेकिन, जहां स्वयं से संघर्ष है, दमन है और स्वयं से ही द्वन्द्व है, वहां शांति कहां? स्वयं को खंड-खंड में तोड़ने की जब तक दृष्टि है, तब तक शांति असम्भव है। शांति का संगीत तो स्वयं की अखंडता में ही पैदा हो

सकता है। बुद्ध की सतत जागरूक प्रज्ञा ने यह स्पष्ट भी अनुभव कर लिया। निश्चय ही वे बहुत सजग निरीक्षक और तटस्थ साक्षी रहे होंगे; अन्यथा स्वयं आरोपित किसी भी जीवन–स्थिति के मोह से मुक्त होना बहुत कठिन है। और अक्सर ही अहंता की तृप्ति ही सत्य की अनुभूति मानली जाती है। लेकिन बुद्ध किसी भी ढांचे में बंधे नहीं और जिन ढांचों को वर्षों के श्रम में स्वयं ही निर्मित किया था, उन्हें अपने ही हाथों से तोड़कर उनका अति–क्रमण करने की क्षमता उन्होंने कभी भी नहीं खोई। यह स्वयं की अतिक्रमण कर जाने की शक्ति ही अंततः उन्हें वहां तक ले गयी जहां कि परम सत्ता की सत्ता का द्वार है। सत्य के लिए स्वयं के अतिक्रमण का साहस चाहिए और उन समस्त काराओं को तोड़ने की शक्ति भी, जिनमें कि परंपरा और समाज व्यक्ति को बांधे होते हैं। दूसरों से लिये गये संस्कारों से पूर्णतया मुक्त हुए बिना कोई स्वयं की सत्ता में प्रवेश नहीं कर सकता। **परंपरा, समाज और संस्कारों के तटों में तो धोके हैं, और ज्ञात की लीक को छोड़ने का जिनमें साहस नहीं है, वे अज्ञात सत्य को जान भी कैसे सकेंगे ? सत्य के अज्ञात सागर में स्वयं की नाव ले जाने के लिए परिचित तट की सुरक्षा को छोड़, अपरिचित की असुरक्षा को वरण किये बिना कोई उपाय भी नहीं है।**

बुद्ध ने अंततः सब छोड़ दिया। संसार तो छोड़ ही चुके थे, अब संन्यास भी छोड़ दिया। राग तो छोड़ ही दिया था, विराग भी छोड़ दिया। भोग तो त्यागा ही था, योग भी त्याग दिया। यह त्याग अद्‌भुत था, अभूत–पूर्व था। इससे उनकी चेतना उस आयाम में प्रविष्ट हुई जहाँ कि सत्ता का केन्द्र है। एक संध्या उन्हें यह अनुभव हुआ कि अत्यन्त सहज और सरल होने में ही सत्य का साक्षात् हो सकता है। तथाकथित साधना की असहजता उन्होंने त्याग दी। चित्त जब तक असहज था, द्वन्द्वग्रस्त था, तब तक तनाव और चिन्ता से मुक्ति नहीं हो सकती थी। उस रात्रि वे सब छोड़कर सो गये। सत्य की खोज का आग्रह भी उन्होंने छोड़ दिया, क्योंकि वह भी वासना ही थी और अशांति का कारण थी। अब उन्हें कुछ भी नहीं पाना था। कामना नहीं थी, तो कोई भविष्य भी नहीं था और न ही कोई अतीत था। अब तो बस वर्तमान ही था। और भोर में, भोर था। अंतिम तारा जब डूब रहा था, तो उनकी आंखें खुली और उन्होंने अत्यन्त सहज, शांत और शून्य चित्त से 'उसे' देखा और 'उसे' देखते–देखते ही उनके भीतर एक क्रांति घटित हो गई; और उन्होंने स्वयं की और सब की आत्यंतिक सत्ता में प्रवेश पा लिया और

उसे न केवल जाना ही जो कि जीवन है, सत्य है, बल्कि उसके साथ एक भी हो गये। सत्य को जानना, सत्य के साथ एक हो जाना है। सत्य की यह अनुभूति उन्हें निर्विकल्प होने से मिली।

चित्त जब तक विकल्पों का चुनाव करता है, तब तक स्वयं में स्थित नहीं हो पाता। और जब वह समस्त विकल्पों के प्रति अचुनाव ग्रहण कर लेता है और मात्र उनका साक्षी रह जाता है, तभी वह उनसे मुक्त होता है और चेतना स्वयं में प्रवेश करती है। स्वयं में प्रवेश सर्व में प्रवेश है; क्योंकि सत्ता के केन्द्र पर कोई अस्मितायें नहीं हैं। अहंता अज्ञान है, भ्रम है। ज्ञान में कोई अहंता नहीं है। वहां व्यक्ति नहीं है, ब्रह्म है। व्यक्ति से मुक्त हो जाना ही निर्वाण है। निर्वाण जीवन है, जीवन का अर्थ और अभिप्राय है। निर्वाण दुख–मुक्ति है। निर्वाण मृत्यु को जीतकर अमृत को उपलब्ध कर लेना है।

प्यारे अमृत-पत्र

प्यारी चन्दन,

प्रेम। पत्र मिला है। तुम्हारे हृदय में जिज्ञासा की नयी–नयी तरंगें उठते देखकर मैं आनंदित हूं। जीवन जड़ता नहीं है। जीवन तो अविछिन्न प्रवाह है। लेकिन चित्त जड़ है। वह अतीत और मृत है। उसके कारण ही जीवन में भी गतिरोध आ जाते हैं और वही बांध बनकर जीवन–सरिता को छोटे–छोटे डबरों में बदल देता है। चित्त को इन दीवारों को रोज ढहाते चलना जरूरी है। स्मृति और संस्कार के मृत अवरोध–तत्त्व रोज जलाते चलना आवश्यक है। उनकी राख में से ही, उनकी मृत्यु में से ही, जीवन की अखंड धारा उपलब्ध होती है। उसकी उपलब्धि ही आत्मा है। उसकी उपलब्धि ही आनंद है। और उसे पाकर स्वयं न हो जाना ही मोक्ष है।

अभाव का, किसी गहरी रिक्तता का तुम्हें अनुभव होता है, यह शुभ है; क्योंकि अभाव की यह पीड़ा ही नये जीवन के जन्म की प्रसव–पीड़ा बनती है। अभागे हैं वे, जो अपनी क्षुद्र व्यस्तताओं में इस अभाव को ढांक लेते हैं; क्योंकि इस भांति वे स्वयं की आत्मा को ही नहीं जान पाते हैं। और

अधिकतर जीवन अभाव को ढांकने में व्यर्थ व्यय होते हैं। किसी भी दौड़ में किसी भी तृष्णा में इस अभाव को ढांका जा सकता है। धन, पद, पुण्य या मोक्ष—कोई भी दौड़ स्वयं की रिक्तता को ढांक देती है। संसार या संन्यास—कोई भी वासना उस पर आवरण बन जाती है। और स्मरण रहे कि आवरणों से अभाव मिटता नहीं—मात्र भूला ही रहता है। हर मृत्यु उसे पुनः उघाड़ देती है और तब फिर उसे ढांकने के लिए नये चक्र का प्रारंभ हो जाता है। इसीलिए तो मृत्यु का भय होता है; क्योंकि जिस सत्य को व्यक्ति ने जीवन भर ढांका, मृत्यु उसका ही अत्यंत कष्टदायी साक्षात् बन जाती है। इस सत्य को मृत्यु के पूर्व ही जो स्वयं ही जान लेता है, वह सौभाग्यशाली है। अभाव से भागना नहीं, वह मित्र है। उसमें जीना। उसमें जीने से ही सरलता और अहंशून्यता आती है। और, शून्यता सत्य का द्वार है। अभाव में जीने को ही मैं ध्यान में कहता हूं।

प्रेम की अभिव्यक्ति कैसे हो, यह तुमने पूछा है। अहंकार में जो जीता है, उससे घृणा की अभिव्यक्ति होती है। अभाव में जो जीता है, उसकी श्वास प्रेम बन जाती है।

'मैं' नहीं हूं, यह जान लेना ही प्रेम है।

रजनीश के प्रणाम

प्यारी चन्दन,

प्रेम। पत्र मिला है। हृदय जब तक प्रेम से झंकृत न हो, तब तक एक रिक्तता और अभाव का अनुभव होता है। प्रेम के अतिरिक्त आत्मा की पूर्णता की अनुभूति और किसी द्वार से नहीं होती है। प्रेम के अभाव में आत्मा में क्या है?—अहं और केवल अहं, 'मैं' और केवल 'मैं'। यह 'मैं' एकदम मिथ्या है। छाया की भी वह छाया है। उसकी उपस्थिति ही रिक्तता है। वह है, यही अभाव है। अहं की छाया प्रेम के प्रकाश में तिरोहित हो जाती है। और तब जो शेष रह जाता है, वही है।

मैं कहता हूं: प्रेम ज्ञान है। और अज्ञान क्या है? अहं अज्ञान है। और जब अहं ही ज्ञान की खोज करने लगता है, तो वैसा ज्ञान महा—अज्ञान बन जाता है। अहं की खोज से पांडित्य आता है। पांडित्य सूक्ष्मतम परिग्रह है। प्रज्ञा का जन्म अहं से नहीं, प्रेम से होता है। इसलिए ही अहंकार प्रेम से

सदा भयभीत रहता है। वह राग कर सकता है। विराग कर सकता है। लेकिन, प्रेम ? नहीं। प्रेम तो उसकी मृत्यु है।

प्रेम न राग है, न विराग। प्रेम परम वीतरागता है।

प्रेम सम्बन्ध नहीं है। प्रेम है स्वयं की स्थिति। राग किसी से होता है। विराग भी किसी से होता है। प्रेम स्वयं में होता है। वह है सहज स्फुरणा। अकारण और अप्रेरित। और इसलिए राग भी बाँधता है, विराग भी बांधता है। प्रेम मुक्त करता है। प्रेम मुक्ति है।

धर्म क्या है ?

संगठना या साधना ?

धर्म संगठित होते ही धर्म नहीं रह जाता है। संगठन के स्वार्थों की दिशा धर्म की दिशा से भिन्न ही नहीं विपरीत भी है। इसीलिए धर्म के नाम पर खड़े संप्रदाय वस्तुतः धर्म की हत्या में ही संलग्न रहते हैं। धर्म है वैयक्तिक चेतना—जागरण। संप्रदाय है, भीड़ का शोषण। धर्म के लिए चेतना का भीड़ से, समूह से स्वतंत्र होना आवश्यक है, जबकि संप्रदाय चेतन की ऐसी स्वतंत्रता का शत्रु ही हो सकता है। संप्रदायों की दासता में केवल वे ही हो सकते हैं जो कि स्वयं के मित्र नहीं हैं। परतंत्रता शत्रु है। स्वतंत्रता ही मित्र है।

यह तुमने क्या लिखा है : "मैं प्रसन्न रहना जानती हूं। मैं प्रसन्न रहने का प्रयास करती हूं।" नहीं, नहीं—वह प्रसन्नता शुभ नहीं है, जो कि प्रयास से आती है। मैं तो तुम्हारे हृदय में उस आनन्द का जन्म चाहता हूं, जो अनायास ही बहता है। स्व-स्फूर्त ही हृदय की वीणा पर जो संगीत बजने लगता है, उसके अतिरिक्त—शेष सब संगीत धोखा है। आनंद को खोजो—सहज आनन्द को। अभ्यासजन्य प्रसन्नता से तृप्त और तुष्ट मत हो जाना। ऐसी स्थितियां अंततः आत्मघात सिद्ध होती हैं।

वहां सबको प्रणाम।

और प्रेम।

रजनीश के प्रणाम

प्यारी चन्दन,

प्रेम। तुम्हारी जीवन यात्रा में किंचित् भी सहयोगी हो सकूं तो मुझे जो आनंद मिलेगा उसे शब्द देना संभव नहीं है। प्रेम न तो कष्ट जानता है और न भार। प्रेम तो निर्भार है। आनंद के अतिरिक्त उसकी और कोई

अनुभूति ही नहीं है। क्या मेरे इस प्रेम का तुम्हें अनुभव नहीं होता है ? जो मेरे हृदय से पहाड़ी झरनों की भांति सतत् बहा जाता है, निश्चय ही उसकी प्रतिध्वनियां तुम्हारे हृदय को भी तो स्पर्श करती ही होंगी ? भीतर खोजना। प्रेम का परमात्मा वहां सदा ही उपस्थित है। प्रेम के दिव्य आलोक को खोकर ही मनुष्य स्वयं को खो देता है। मैं आत्मा की, मोक्ष की खोज को मूलतः प्रेम की ही खोज मानता हूं। प्रेम के प्रहार में ही अहंकार गलता है और आत्मा उपलब्ध होती है और प्रेम के प्रहार में ही वासना के बंधन टूटते और मोक्ष के द्वार खुलते हैं।

प्रेम प्रकाश के लिए आमंत्रण है और जो प्रेम के विपरीत चलता है, वह अपने ही हाथों से परमात्मा से दूर होता जाता है।

प्रेम या अहंकार—जीवन की दो ही दिशायें हैं और परिणाम भी दो ही हैं—मोक्ष या मृत्यु। प्रेम को खोजो। शेष सब उसके पीछे अपने आप चला आता है। और स्मरण रहे कि प्रेम के दो शत्रु हैं—राग और विराग। राग और विराग दोनों से उपशम हुए चित्त में प्रेम का जन्म होता है।

सबको प्रेम और प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

प्यारी चन्दन,

प्रेम। तेरा पत्र मिला है। यह जानकर बहुत आनंदित हूं कि तू कांटों के बीच में रहकर भी फूल बने रहने की क्षमता नहीं खो रही है। मैं इसे ही साधुता का एकमात्र लक्षण कहता हूं। लेकिन, जो वस्त्रों में ही साधुता जानते हैं, वे शायद इसे पहचान भी न सकें। पर उनकी पहचान की चिन्ता भी नहीं करनी है। उस पहचान का मूल्य दो कौड़ी भी नहीं है। दूसरों की पहचान स्वीकृति-अस्वीकृति का नहीं, मूल्य है स्वयं की अपनी पहचान का। उस दिशा में तू निरंतर ऊपर उठती रहे, यही मेरे प्राणों की कामना है। इसलिए किसी के प्रति भूलकर भी कटु मत होना। वैसी कटुता उन्हें व्यर्थ ही मूल्य देना है। हां ! उनकी कटुता के मध्य सदा मधुर जरूर बनी रहना। वैसी मधुरता को अपना स्वभाव बना। वह किसी के प्रति नहीं, बस स्वयं का वैसा होना बने।

वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

प्यारी चन्दन,

प्रेम। तेरा पत्र मिला है।
नये वर्ष की शुभकामनायें भी।
समय तो रोज नया होता है।
प्रतिपल नया है।
लेकिन आदमी पुराना ही बना रहता है।
नहीं—आदमी नया होता ही नहीं है।
समय नया होता जाता है और आदमी पुराना होता जाता है।
यही मृत्यु है।
समय के साथ नया होना ही जीवन है।
समय और स्वयं में जरा भी फासला नहीं चाहिए।
फिर ही उसका पता चलता है, जो जीवन है—
जो है।
और आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि वह
जीवन समय के अतीत है!
समय के साथ—वर्तमान के साथ पूर्ण एकता
सधते ही चेतना समय के अतीत हो जाती है।
नये वर्ष में तेरे लिए ऐसी ही अनुभूति की
कामना करता हूं।
आर्या सुमति का मेरे प्रणाम।
और सबको भी।

रजनीश के प्रणाम

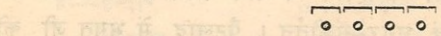

सत्य एक है। उस तक पहुंचने के द्वार अनेक हो सकते हैं; पर जो द्वार के मोह में पड़ जाता है वह द्वार पर ही ठहर जाता है और सत्य के द्वार उसके लिए कभी नहीं खुलते हैं।

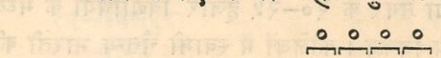

विश्वनीड़-कीर्तन मण्डली-यात्रा

'विश्वनीड़' आजोल के १० संन्यासी-संन्यासियों की एक कीर्तन-मण्डली ने स्वामी चैतन्य भारती के नेतृत्व में ५ सितम्बर ७१ से देश के कोने-कोने में भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया है। यह मण्डली स्थान-स्थान पर जाकर भजन-कीर्तन करती है। जिज्ञासुओं को ध्यान के प्रयोग करवाती है। रोगियों पर "**प्रभु-कृपा-चिकित्सा**" करती है; भाषण देती है। भगवान श्री रजनीश के साहित्य का विक्रय कर उनके अनमोल विचारों का प्रचार करती है। मण्डली के संन्यासियों के नाम इस प्रकार हैं—(१) स्वामी चैतन्य भारती; (२) माँ आनंद मधु; (३) माँ याग प्रिया; (४) माँ योग वीणा; (५) स्वामी गुणातीत सरस्वती; (६) स्वामी आनंद समदर्शी; (७) स्वामी आनन्द असंग; (८) स्वामी चैतन्य विजय; (९) स्वामी चैतन्य कीर्ति; (१०) माँ योग कृपा एवं ज्योति।

यह मण्डली ५ सितम्बर को बम्बई से बलसाड गयी। वहां कीर्तन व ध्यान के सफल आयोजन रहे। साहित्य विक्रय भी उत्साहवर्धक रहा, ६ सितम्बर को नवसारी; तत्पश्चात् दाण्डी। दाण्डी में विनय मन्दिर हाई-स्कूल में विद्यार्थियों को ध्यान, कीर्तन और साहित्य भेंट। ७ सितम्बर नवसारी में श्री दिनकर भाई, एडवोकेट के संयोजकत्व में तीन दिन ध्यान, रात्रि माँ आनन्द मधु के प्रवचन। शहर के कई स्कूलों-कालेजों में तथा रोटरी क्लब में ध्यान के प्रयोग, प्रवचन, नगर-संकीर्तन और साहित्य-विक्रय। तत्पश्चात् गड़त गांव में प्रचार; जीवन जागृति केन्द्र की स्थापना, संचालक श्री मुकुन्द भाई मेहता। १० से १७ सितम्बर पैटलाद में। 'दशा दिशावन वणिकनी वाणी' में प्रातः हजारों लोगों ने ध्यान के प्रयोग में भाग लिया। संध्या ८॥ बजे माँ आनंद मधु का प्रवचन एवं नगर-संकीर्तन। पैटलाद में भगत जी की धर्मशाला में रोगियों पर 'प्रभु-कृपा-चिकित्सा'। कालेजों, स्कूलों एवं अन्य संस्थाओं में भी 'प्रभु-कृपा-चिकित्सा' एवं साहित्य विक्रय। अंतिम दिन जीवन-जागृति-केन्द्र की स्थापना। यहां के नगरवासियों ने संन्यासियों के अभिनंदन-समारोह का भव्य आयोजन किया। १८ सितम्बर आनन्द में नगर-संकीर्तन, साहित्य-विक्रय, शारदा-मंदिर में प्रवचन और ध्यान। १९-२० सितम्बर वल्लभ विद्या नगर के २०-२५ हजार विद्यार्थियों के मध्य प्रचार; यूनिवर्सिटी में साहित्य विक्रय। कालेजों में स्वामी चैतन्य भारती की

परिचर्चाएं। २३ सितम्बर आनंद से प्रस्थान। 'माउन्ट आबू साधना–शिविर' में सम्मिलित। २००० रु. का साहित्य-विक्रय हुआ। सब मिलाकर यात्रा अत्यन्त आनन्द पूर्ण।

मण्डली के अगले कार्यक्रम निम्न प्रकार हैं—

हैदराबाद-- १२ से २० अक्टूबर

राजस्थान–

संयोजक—श्री हीरालाल जी कोठारी, दांताभेरू, उदयपुर, (राजस्थान)

१—उदयपुर	तारीख	२७ अक्टूबर	से	३० अक्टूबर	७१ तक
२—जोधपुर	,,	१ नवम्बर	से	५ नवम्बर	७१ तक
३—बीकानेर	,,	७	,,	११	,,
४—चुरू और पिलानी	,,	१३	,,	१५	,,
५—जयपुर और वनस्थली	,,	१७	,,	२४	,,
६—कोटा	,,	२६	,,	२८	,,
७—अजमेर	,,	३० नवम्बर व १–२ दिसम्बर			
८—भीलवाड़ा	,,	४ व ५ दिसम्बर			
९—बयावर	,,	७ व ८	,,		

मध्यप्रदेश—

संयोजक—स्वामी आनंद विजय C/o **पुष्प कटपीस भंडार,**
जवाहरगंज, जबलपुर (म. प्र.)

१—नीमच	तारीख	१४ से	१६	दिसम्बर	७१ तक
२—मंदसौर	,,	१८ से	१९	,,	
३—रतलाम	,,	२१ से	२३	,,	
४—इन्दौर	,,	२६ से	३०	,,	
५—भोपाल	,,	१ से	४	जनवरी	
६—होशंगाबाद	,,	६ से	११	,,	
७—बाबई	,,	१२ से	१३	,,	
८—पिपरिया	,,	१५	—	,,	
९—गाडरवारा	,,	१७ से	१९	,,	
१०–अमरवाड़ा	,,	२१ से	२२	,,	
११–जबलपुर	,,	२३ से	२६	,,	
१२–सागर	,,	२७ से	२८	,,	

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !
नई साज सज्जा में
भगवान श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक
त्रैमासिक संकलन पत्रिका
ज्योति शिखा
संपादक—श्री महीपाल मूल्य ५) वार्षिक
(आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये
या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें)
संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,
डा० डी० एन० रोड, बम्बई–१
Phone : 264530

आवश्यक सूचना

गत वर्ष युक्रांद का 'आचार्य रजनीश-जन्म-दिवस विशेषांक' प्रेमियों द्वारा कितना पसन्द किया गया, इसका अनुभव इसी से हो जाता है कि आज भी प्रेमियों के इस आशय के सुझाव एवं आग्रह आते रहते हैं कि उस तरह के विशेषांक कभी–कभी निकालते ही रहें। इस वर्ष तो हम कोई विशेषांक नहीं निकाल पाये; परन्तु आचार्य श्री के जन्म-दिवस पर पुनः विशेषांक निकले, ऐसा ख्याल है। अतः प्रेमियों का सहयोग निवेदित एवं अपेक्षित है। प्रेमी आचार्य श्री से सम्बन्धित संस्मरण व भाव आदि लिख भेजें। आचार्य श्री द्वारा लिखे गये पत्र भी भेजे जा सकते हैं। आचार्य श्री के किन्हीं विचारों की स्वस्थ आलोचना भी प्रकाशित की जा सकेगी। इस सूचना को प्रेमी हमारा व्यक्तिगत पत्र समझें और रचनाएं ३१ अक्टूबर तक अवश्य भेजने की कृपा करें।

विशेषांक का सम्पादन पुनः आचार्य–प्रेमियों में सुपरिचित स्वामी अगेह भारती करेंगे, अतः विशेषांक हेतु रचनाएं सीधे उन्हीं के पते पर भेजें। उनका पता इस प्रकार है—

स्वामी अगेह भारती
जेड. २१७ 'सी' अपर लाइन्स जबलपुर (म. प्र.)

नोट–कृपया अपनी रचना–सामग्री साफ अक्षरों में, पृष्ठ के एक ओर, डबल स्पेस में और हाशिया देकर ही भेजें, ताकि प्रकाशन में असुविधा न हो।

(साहित्य सूची कवर पृष्ठ २ के आगे)

गीता दर्शन	...	...	...	५-००
प्रेम है द्वार प्रभु का				
संभावनाओं की आहट	...	...	...	६-००

साहित्य प्राप्ति स्थल

(१) जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा. डी एन. रोड, बम्बई : १ फोन : २६४५३०

(२) मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७

(३) स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर

(४) आर. अंबानी एंड कंपनी., अपोजिट : जिमखाना, राजकोट

(५) चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रावपुरा बड़ौदा

(६) मोतीलाल बनारसीदास, नेपाली खपरा, वाराणसी

(७) मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना

(८) भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट, जालंधर

(९) सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद

(१०) बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद

(११) सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर–२

(१२) हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

(१३) सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर

(१४) श्री आर. के. पुंगलिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-२

(१५) स्वामी आनन्द वेदांत, जीवन जागृति केन्द्र, घंटाघर, नीमच (म. प्र.)

(१६) श्री हीरालाल कोठारी, दांता भैरू, कुम्हारवाड़ा, उदयपुर (राज.)

शुक्रांक

सितंबर १९७१

"संन्यास का अर्थ है, जीवन को एक काम
की भांति नहीं, वरन एक खेल की
भांति जीना।"

—आचार्य श्री रजनीश

संन्यास के आलोक से अमृत-वर्षा के शुभाकांक्षी

स्वामी गोविन्द सिद्धार्थ
(श्री जे. डी. लश्करी),
ए टु जेड इन्डस्ट्रियल एस्टेट,
लोअर परेल, बंबई : १३
फोन : 370692